खण्ड 3
अधि-नीतिशास्त्र

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड 3 परिचय

खण्ड 3 "अधि–नीतिशास्त्र" पाँच इकाईयों में विभाजित है। इस खण्ड में विद्यार्थी अधि–नीतिशास्त्र और प्रमुख अधि–नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों को समझेगा। इस खण्ड में हम प्रकृतिवाद, निर्–प्रकृतिवाद, विषयिनिष्ठवाद, सम्वेगवाद और परामर्शवाद की चर्चा करेंगे।

इकाई 10 "अधि–नीतिशास्त्र का परिचय" अधि–नीतिशास्त्र की परिभाषा और प्रकृति की चर्चा करती है। यह इकाई अनेक नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों; मानकीय नीतिशास्त्र, अधि–नीतिशास्त्र, अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र के मध्य अन्तर को भी प्रस्तुत करती है। यह इकाई अनेक अधि–नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों की व्याख्या करती है।

इकाई 11 "प्रकृतिवाद एवं निर्–प्रकृतिवाद" प्रकृतिवाद और निर्–प्रकृतिवाद के मध्य अन्तर के साथ–साथ विभिन्न प्रकृतिवादी एवं निर्–प्रकृतिवादी मतों की चर्चा करती है। इस इकाई में विद्यार्थी जी. ई. मूर के नैतिक गुण क्या है? इस प्रश्न पर मत का अध्ययन करेगा।

इकाई 12 "विषयिनिष्ठवादः डेविड ह्यूम" विषयिनिष्ठवाद के विभिन्न संस्करणों के बारे में है। विद्यार्थी डेविड ह्यूम के विषयिनिष्ठवाद की समझ में समर्थ होगा।

इकाई 13 "सम्वेगवादः चार्ल्स स्टीवेन्सन" सम्वेगवाद की पूर्वमान्यताओं और युक्तियों की चर्चा करती है। इस इकाई की मुख्य विषय–वस्तु चार्ल्स स्टीवेन्सन का सम्वेगवाद है।

इकाई 14 "परामर्शवादः आर एम हेयर" परामर्शवाद के अधि–नीतिशास्त्रीय मत की चर्चा करती है। यह इकाई हेयर के परामर्शवाद और उसकी नीति–दर्शन में महत्ता की चर्चा करती है।

इकाई 10 अधिनीतिशास्त्र का परिचय*

रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 परिचय

10.2 परिभाषा

10.3 अधिनीतिशास्त्र की शाखाएँ

10.3.1 नैतिक संज्ञानवाद

10.3.2 नैतिक असंज्ञानवाद

10.4 सारांश

10.5 कुंजी शब्द

10.6 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई आपको निम्नलिखित विषयों को समझने में सुयोग्य बनायेगी,

- अधिनीतिशास्त्र का अर्थ,
- नीतिशास्त्र की अन्य शाखाओं जैसे आदर्शमूलक/मानकीय नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र के साथ इसकी तुलना,
- अधिनीतिशास्त्र की विभिन्न शाखाओं का परिचय, और उनकी पूर्वमान्यताएं, ढांचा, आदि।

10.1 परिचय

नीतिशास्त्र नैतिक सिद्धान्तों का दार्शनिक अध्ययन है। हमारे जीवन में क्या शुभ और क्या अशुभ ध्येय है और हमारे दैनिक जीवन के कौन से कर्म उचित और अनुचित हैं, नीतिशास्त्र इसका अध्ययन करता है। नीतिशास्त्र का प्रमुख कार्य ये निर्धारित करना है कि हमें अपना जीवन किस प्रकार जीना चाहिये और हमारे जीवन का ध्येय क्या होना चाहिये। हम यह भी कह सकते हैं कि यह हमारे उचित और अनुचित व्यवहार/कृत्य में सम्मिलित अवधारणाओं, पथ–प्रदर्शक नियमों और सिद्धान्तों का व्यवस्थित अया अनुचित बनाने वाले नियमों का अध्ययन करते हैं। इसके अन्तर्गत हम अच्छी आदतों या सद्गुण को अपनाने, कर्तव्य जिनका पालन करना चाहिये, और हमारे कृत्य के परिणामों का अध्ययन है। नीतिशास्त्र को मुख्यतः तीन शाखाओं में बांटा जाता है – आदर्शमूलक या मानकीय या नियामक नीतिशास्त्र (नॉर्मेटिव एथिक्स), अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र (एप्लायड एथिक्स) और अधि–नीतिशास्त्र (मेटा–एथिक्स)। नियामक नीतिशास्त्र उचित और अनुचित कर्मों की व्याख्या करता है। नियामक नीतिशास्त्र

* सुश्री सुरभि उनियाल, विद्यावाचस्पति शोधक, दर्शन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, अनुवादक– डॉ. शिल्पी श्रीवास्तव, सहायक प्राध्यापिका, दर्शन विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली

आदर्शों/मानकों, आचरण की संहिता, हमारे कृत्य को उचित अन्य पर प्रभाव, इन सभी पर विचार मोरल मॉरल करते हैं। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र नैतिक सिद्धांतो का विशिष्ट परिस्थितियों पर अनुप्रयोग का प्रयास है। इसके अन्तर्गत कुछ विशेष विवादास्पद समस्याओं, जैसे गर्भपात, भ्रूण–हत्या, पशु–अधिकार, मृत्युदण्ड, मानव–प्रतिरूपण (ह्यूमन–क्लोनिंग) आदि का परीक्षण सम्मिलित है। जहाँ एक ओर नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र इस तथ्य पर केंद्रित है कि वो क्या है जो शुभ है, और मनुष्य के लिये कौन से कर्म उचित है, वहीं दूसरी ओर अधिनीतिशास्त्र का विषय स्वयं नैतिकता का स्वरूप है। अधिनीतिशास्त्र नैतिक आदर्शों, उनके उद्‌गम एवं उनके वास्तविक अर्थ की अन्वेषण करता है। अधिनीतिशास्त्र आदर्शमूलक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र को आधार प्रदान करता है।

नियामक नीतिशास्त्र, अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र और अधिनीतिशास्त्र के बीच के भेद को हम फुटबॉल के खेल के दृष्टान्त द्वारा समझ सकते हैं। "यहाँ फुटबॉल के खेल से जुड़े विभिन्न अंगों को नीतिशास्त्र की विभिन्न शाखाओं के सन्दर्भ में समझेंगे। खेल में भाग लेने वाले खिलाड़ियों को हम अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्रियों के समान मान सकते हैं। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्री विशेष परिस्थितियों से जुडे हुये नैतिक प्रश्नों में रुचि रखते हैं, जैसे कि, क्या गर्भपात अनुचित है? क्या आत्महत्या अनुज्ञेय (जायज) है?, क्या हम दान देने के लिये नैतिकरूप से बाध्य हैं? क्या मानव प्रतिरूपण अनुचित है? इत्यादि। खेल में रेफरी का कार्य होता है उन नियमों की व्याख्या करना जिनके अनुसार खिलाड़ी खेलेते हैं। नीतिशास्त्र में यह कार्य नियामक नीतिशास्त्री का होता है। नियामक नीतिशास्त्री की रुचि उन आधारभूत सिद्धांतों में होती है जो अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्री का मार्गदर्शन करते हैं। उदाहरणतः क्या उचित और अनुचित का निर्णय हमारे कर्मों के फल पर निर्भर करना चाहिये? हमें किस प्रकार का मनुष्य बनने का प्रयास करना चाहिये? अंत में खेल–विश्लेषक होते हैं जो न तो स्वयं खेल खेलते है और ना ही खेल के नियमों को समझाते हैं परंतु ये समझने और वर्णन करने का प्रयास करते हैं कि वस्तुतरू खेल में क्या हो रहा है। यह कार्य अधिनीतिशास्त्री के कार्य के समान है, जो नीतिशास्त्र के मूल कार्य के सन्दर्भ में प्रश्न करता है। अधिनीतिशास्त्र इस प्रकार से आदर्शमूलक नीतिशास्त्र एवं अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र से मूलतः भिन्न है।"

इस इकाई में हमें अधिनीतिशास्त्र का विस्तारपूर्वक परिचय मिलेगा और साथ ही हम इसके अन्तर्गत आने वाले विभिन्न सिद्धान्तों से भी परिचित होंगे।

10.2 परिभाषा

"अधिनीतिशास्त्र नैतिक विचारों, वार्ताओं एवं रीतियों के तत्वमीमांसीय, ज्ञानमीमांसीय, अर्थ–विषयक एवं मनोवैज्ञानिक पूर्वधारणाओं एवं प्रतिबद्धताओं को समझने का प्रयास है।" (प्लेटो स्टेनफोर्ड एन्सायक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसोफी, अधिनीतिशास्त्र पर लेख)। अधिनीतिशास्त्र नैतिक निर्णयों एवं कृत्यों के स्वरूप और अर्थ की जिज्ञासा है। अधिनीतिशास्त्र का उद्देश्य यह अन्वेषण करना है कि नैतिक–सिद्धान्त का उद्‌गम क्या है, और उनका क्या तात्पर्य है। उदाहरणार्थ, जब हम यह कहते हैं कि, ईमानदारी शुभ (सद्‌गुण) है, तब हम क्या कहना चाहते हैं, अथवा दूसरे शब्दों में, किसी नैतिक निर्णय में 'शुभ' पद के प्रयोग से हमारा क्या तात्पर्य होता है। अधिनीतिशास्त्र पद, दो शब्दो के योग से बना है : अधि एवं नीतिशास्त्र। यहाँ अधि को प्रायः पश्चात् या परे के अर्थ

में समझा जाता है जो कि इसका सही अर्थ नहीं है। अधि का अर्थ यहाँ 'के बारे में विचार' अथवा नीतिशास्त्र से "अलग बैठ के" है जिसका तात्पर्य नीतिशास्त्र के आधारभूत मुद्दों को समझना है। ये हमारी नैतिक रीतियों पर एक विहंगम दृष्टि डालते हुये नीतिशास्त्र के आधारभूत प्रश्नों को समझने का प्रयास करता है। अतः यह कहना गलत होगा की अधिनीतिशास्त्र का क्षेत्र या विषय नीतिशास्त्र से दूर या परे है। सत्य तो यह है कि अधिनीतिशास्त्र नैतिकता के मूल स्वरूप की गहरी विवेचना करता है।

यद्यपि "अधिनीतिशास्त्र" शब्द का प्रयोग पहली बार बीसवीं शताब्दी में हुआ परन्तु नैतिक भाषा, गुण एवं निर्णयों की अवस्थिति एवं नींव के सन्दर्भ में आधारभूत दार्शनिक चिंतन प्राचीन यूनानी दार्शनिक प्लेटो एवं अरस्तू के लेखन में भी पाया जाता है। प्लेटो ने यूथेप्रो नामक संवाद में सुकरात द्वारा ईश्वरीय आदेशों और नैतिकता के बीच भेद करने को नवीन अधिनीतिशास्त्रीय वाद–विवाद का पूर्वगामी माना जाता है जिसने नैतिक मूल्यों को एक धर्म–निरपेक्ष आधार प्रदान किया। अरस्तु ने भी अपनी पुस्तक *निकोमेकियन एथिक्स* के प्रथम अध्याय में सद्गुण और आनंद को मनुष्य की जैविक और राजनैतिक प्रकृति पर निर्भर माना है और इसकी परीक्षा भी समकालीन अधिनीतिशास्त्र के दृष्टिकोण से की जा सकती है। इसी प्रकार मध्यकालीन युग के अनेक नैतिक विचार जो नैतिकता और मूल्यों को धार्मिक ग्रन्थों, आदेशों, या अनुसरणीय कर्मों के रूप में स्वीकारते हैं, कुछ विशिष्ट अधिनीतिशास्त्रीय मतों का समर्थन करते हैं। इसके विपरीत, इमानुएल काण्ट ने नीतिशास्त्र के ऐसे आधार का प्रतिपादन किया जो विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की मान्यताओं से स्वतंत्र है। काण्ट ने अपनी पुस्तक *ग्राउण्डवर्क फॉर दि मेटाफिजिक्स ऑफ मॉरल्स* में बुद्धि से अनिवार्यतः निःसृत एक सार्वभौमिक नैतिक नियम की प्रस्तावना दी। उनका यह सिद्धान्त अनेक समकालीन नव–काण्टवादी विचारकों द्वारा समर्थित नैतिक वस्तुनिष्ठता के सिद्धान्त का आधार है। नीतिशास्त्र की मुख्य शाखा के रूप में अधिनीतिशास्त्र बीसवीं सदी में जी. ई. मूर के लेखन द्वारा स्थापित हुआ।

अधिनीतिशास्त्र इन प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करता है – क्या नैतिक तथ्यों का अस्तित्व है या क्या नैतिक तथ्य पाये जाते हैं? यदि नैतिक तथ्य होते हैं उनका उद्गम क्या है? यदि नैतिक तथ्य हैं तो हमें उनका ज्ञान कैसे होता है? जब कोई व्यक्ति 'शुभ' और 'उचित' जैसे शब्दों का प्रयोग करता है तो उनका वास्तविक अर्थ क्या होता है? नैतिक मूल्य कहां से आते है? उनका स्रोत और आधार क्या है? क्या कुछ ऐसा है जो सभी समय में सभी व्यक्तियों के लिए उचित अथवा अनुचित है या नैतिकता व्यक्ति, सन्दर्भ और संस्कृति सापेक्ष है? ये कुछ ऐसे मूलभूत प्रश्न हैं जिनका अधिनीतिशास्त्र में अध्ययन किया जाता है। और जो आदर्श मूलक नीतिशास्त्र एवं अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र को आधार प्रदान करते हैं। केन्द्रीय–प्रश्न कि क्या कोई भी नैतिक मत सत्य है? और क्या स्वयं को नैतिक आचरण के लिए प्रतिबद्ध करना बौद्धिक रूप से सही है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए ये आवश्यक है कि लोगों की नैतिक धारणाओं के सही या गलत के होने के सन्दर्भ में स्वयं के कुछ विचार हों। क्या नैतिक वाक्य प्रतिज्ञप्तियों को अभिव्यक्त करते हैं?" इस प्रश्न का उत्तर देने की प्रक्रिया में अधिनीतिशास्त्र को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है– नैतिक संज्ञानवाद एवं नैतिक असंज्ञानवाद जो कि स्वयं अनेक शाखाओं में विभाजित हैं।

बोध प्रश्न I

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) अधिनीतिशास्त्र, नियामक नीतिशास्त्र एवं अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र में भेद कीजिए।

.....

.....

.....

.....

10.3 अधिनीतिशास्त्र की शाखाएं

अधिनीतिशास्त्र को सामान्यतः दो शाखाओं में विभाजित किया जाता है – नैतिक संज्ञानवाद एवं नैतिक असंज्ञानवादी। नैतिक संज्ञानवाद के अनुसार नैतिक वाक्य विश्वासों को व्यक्त करते हैं, इन विश्वासों का सत्यता–मूल्य (जिन्हें हम सत्य या असत्य की कोटि में रख सकते हैं) होता है और इसीलिए ये वाक्य सत्य अथवा असत्य की कोटि में रखे जा सकते हैं। दूसरी ओर नैतिक असंज्ञानवाद में, संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र के विपरीत, यह मान्यता है कि नैतिक वाक्य विश्वास को व्यक्त नहीं करते हैं।

10.3.1 नैतिक संज्ञानवाद

नैतिक संज्ञानवाद एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है जिसके अनुसार (1) नैतिक निर्णय विश्वास का को अभिव्यक्त करते हैं, और (2) उनका सत्यता मूल्य होता है अर्थात् ये कथन सत्य या असत्य कहे जा सकते हैं। मनोवैज्ञानिक संज्ञानवाद का मानना है कि नैतिक कथन नैतिक कृत्य के बारे में हमारे विश्वास की अभिव्यक्ति है। जब कोई ये धारणा व्यक्त करता है कि "हत्या करना अनुचित है" या "गर्भपात नैतिक दृष्टि से अनुचित है" तो वह इस सम्बन्ध में अपना विश्वास व्यक्त करता है। कथन, "हत्या करना अनुचित है" और "गर्भपात नैतिक दृष्टि से अनुचित है।" सत्य या असत्य हो सकते हैं, जिसका अर्थ है कि इनका सत्यता मूल्य होता है। नैतिक कथन सत्य या असत्य हो सकते है, इस विचार को अर्थ–सम्बन्धी संज्ञानवाद कहते हैं। अर्थ–सम्बन्धी संज्ञानवादी दार्शनिकों के अनुसार हमारे नैतिक कथनों की सत्यता या असत्यता इस बात पर निर्भर करती है कि वे कितनी सटीकता से इस जगत के विशिष्ट नैतिक आयाम को सम्बोधित करते हैं। वो क्या है जो इन कथनों को सत्य या असत्य बनाता है? अर्थ–सम्बन्धी संज्ञानवादी दार्शनिकों के अनुसार हमारी नैतिक भाषा का सार उसका विवरणात्मक होना है। जिस प्रकार यह कथन कि 'बिल्ली दरी पर बैठी है' एक विवरणात्मक तथ्य कि बिल्ली दरी पर बैठी है, को प्रस्तुत करता है और इसकी सत्यता इस पर निर्भर करती है कि बिल्ली सचमुच दरी पर बैठी है या नहीं। यह कथन एक ऐसे तथ्य को प्रस्तुत करता है जो जगत के वास्तविक स्वरूप या वस्तु–स्थिति से सम्बन्धित है। ठीक उसी प्रकार नैतिक कथन भी विवरणात्मक तथ्य प्रस्तुत करते हैं और उनकी सत्यता/असत्यता बाह्य जगत या वस्तु–स्थिति पर आधारित होती है। जब हमारा विवरण जगत के अनुरूप (जैसा है, वैसा ही) होता है तो नैतिक कथन सत्य होते हैं और जब वो अनुरुप नहीं होता तो असत्य। नैतिक संज्ञानवादी,

मनोवैज्ञानिक संज्ञानवाद और अर्थ–सम्बन्धी संज्ञानवाद, इन दोनों ही मतों का सम्मिश्रण करता है जब वे यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि नैतिक कथन ऐसे विश्वासों को व्यक्त करते हैं जिनका सत्यता मूल्य होता है और जिसका सत्यता–मूल्य इस बात पर निर्भर करता है कि यह तथ्य अथवा जगत का कितना सटीक विवरण देता है। नैतिक यथार्थवाद, नैतिक विषयिनिष्ठवाद एवं त्रुटि का सिद्धान्त, नैतिक संज्ञानवाद के अन्तर्गत आते हैं।

10.3.1.1 नैतिक यथार्थवाद

नैतिक यथार्थवाद के अनुसार नैतिक कथन विश्वास को व्यक्त करता है और यह विश्वास जगत का मन से स्वतंत्र तथ्य होता है। नैतिक यथार्थवादियों के दो आधारभूत आधारवाक्य हैं, पहला कि नैतिक तथ्यों का अस्तित्व है, और दूसरा कि नैतिक तथ्यों का मानव–मन से स्वतन्त्र अस्तित्व है। जब हम कहते हैं कि नैतिक तथ्य वस्तुनिष्ठ हैं और स्वतन्त्र हैं, तो इसका आशय है कि वे किसी व्यक्ति–विशेष के विश्वासों और अभिवृत्तियों या प्रवृत्तियों पर अथवा किसी संस्कृति की रूढ़ियों या मान्यताओं पर निर्भर नहीं करते हैं। ये विश्वास मात्र कर लेना कि "हत्या करना अनुचित है" इसे अनुचित नहीं बनाता अपितु इसे गलत बनाता है, हत्या से सम्बद्ध 'अनुचित' नामक वास्तविक गुण (जो वस्तुनिष्ठ और मनः–स्वतंत्र है) का अस्तित्व होना। नैतिक यथार्थवाद को दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है : नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद एवं नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद।

अ) नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद

नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद के अनुसार वस्तुनिष्ठ और प्राकृतिक नैतिक गुणों का अस्तित्व होता है। उनका मानना है कि हमें नैतिक सत्यों का आनुभविक ज्ञान होता है। प्रकृतिवाद की परिभाषा उस सिद्धान्त के रुप में दी जा सकती है जो कि मोटे तौर पर उन सभी अपचयन करने वाले नैतिक सिद्धान्तों को समेटता है जो नैतिक प्रत्ययों की प्राकृतिक घटनाओं के रूप में व्याख्या करते हैं, जैसे कि सुखवाद और उपयोगितावाद, 'शुभ', 'कर्तव्य' एवं 'उचित' की इच्छाओं की पूर्ति के रुप में व्याख्या करने वाले सिद्धान्त, और साथ–ही, विषयिनिष्ठवाद या आत्मनिष्ठवाद और सापेक्षवाद के प्रतिज्ञप्तिवादी एवं असंज्ञानवादी प्रकार। जेरेमी बेन्थम और जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे उपयोगितावादी दार्शनिकों ने नैतिक शुभ की परिभाषा इस प्रकार दी है कि जो कार्य अधिकतम व्यक्तियों को अधिकतम सुख देता है (गुणात्मक सुख या आनन्द, विशेषरूप से, मिल के उपयोगितावाद के संस्करण में) वो शुभ है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इन दार्शनिकों ने 'शुभ' को प्राकृतिक गुण माना (क्योंकि उनका कहना है कि, हम सुख को नाप सकते हैं)।

ब) नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद

नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक गुण प्राकृतिक गुणों से पूर्णतः भिन्न हैं। जी. ई. मूर निर्प्रकृतिवाद के प्रमुख प्रस्तावक थे। मूर के अनुसार नैतिक गुणों का प्राकृतिक गुणों के समान बाहरी जगत में अस्तित्व नहीं है और ये मूलतः सरल निर्प्राकृतिक गुण होते हैं। यहाँ शुभ को एक प्राकृतिक गुण के समान नहीं देखा जाता है, जिसका ज्ञान आनुभविक तरीके से होता है। निर्प्रकृतिकवादी दार्शनिकों के अनुसार, निर्प्राकृतिक गुणों का ज्ञान हमें हममें उपस्थित नैतिक बोध

की सहायता से अंतर्प्रज्ञा की तरह होता है। जी. ई. मूर ने नैतिक गुणों को प्राकृतिक गुणों के समान मानने का विरोध किया क्योंकि वे ये मानते थे कि नैतिक गुण मूल रूप से सरल होते हैं। मूर नैतिक गुणों का तादात्म्य प्राकृतिक गुणों से करने को 'प्राकृतिक दोष' (नैचुरलिस्टिक फैलेसी) की संज्ञा देते हैं। मूर शुभ को निर्–नैतिक गुणों, फिर चाहे यह प्राकृतिक हो या फिर अति–प्राकृतिक, के समान मानने के विरुद्ध हैं।

10.3.1.2 नैतिक विषयिनिष्ठवाद या नैतिक आत्मनिष्ठवाद

नैतिक विषयिनिष्ठवाद या नैतिक आत्मनिष्ठवाद के अनुसार नैतिक गुण वस्तुनिष्ठ नहीं होते और इसीलिए इसे नैतिक अयथार्थवाद का कहते हैं। नैतिक विषयिनिष्ठवाद के अनुसार नैतिक कथनों की सत्यता अथवा असत्यता, व्यक्तियों की अभिवृत्तियों अथवा रूढ़ियों या मान्यताओं पर निर्भर करती है। इस विचार के अनुसार, नैतिक कथन व्यक्तियों की अभिवृत्तियों, मतों या सम्वेदनाओं को अन्तर्निहित करता है। जब कोई व्यक्ति कहता है कि "इच्छामृत्यु अनुचित है और इसकी अनुमति नहीं देनी चाहिए" तो यह प्रतीत हो सकता है कि इस कथन का सत्यता मूल्य होगा परन्तु यह केवल इच्छामृत्यु के प्रति किसी व्यक्ति कि नापसंद अथवा असहमति को व्यक्त करता है। ये ठीक उसी प्रकार है जैसे कि ये कहना कि "मुझे इच्छामृत्यु पसंद नहीं है।" नैतिक विषयिनिष्ठवाद के अन्तर्गत व्यक्तिपरक विषयिनिष्ठवाद एवं सांस्कृतिक सापेक्षवाद के सिद्धान्त आते हैं। व्यक्तिपरक विषयिनिष्ठवाद का आशय है किसी व्यक्ति–विशेष का अनुभव या अभिवृत्ति और सांस्कृतिक सापेक्षवाद के अनुसार संस्कृतियां भिन्न–भिन्न हैं और उनके मूल्य या नैतिकता भिन्न–भिन्न होती है, इसी कारण इसे सापेक्षवाद कहते हैं। नैतिक आत्मनिष्ठवाद के अन्तर्गत आदर्श प्रेक्षक का सिद्धान्त एवं दैवीय आदेश सिद्धान्त आते हैं।

अ) आदर्श प्रेक्षक सिद्धान्त (आइडियल ऑब्जर्वर थ्योरी)

आदर्श प्रेक्षक सिद्धान्त के अनुसार नैतिक निर्णयों की सत्यता व असत्यता एक आदर्श प्रेक्षक की सहमति या असहमति पर आधारित होती है। एक आदर्श प्रेक्षक "वह है जो किसी विशिष्ट दृष्टिकोण से उत्पन्न पूर्वग्रहों से प्रभावित हुए बिना नैतिक निर्णय बनाता या लेता है"। (*प्लेटो स्टेन्फॉर्ड एन्साइक्लोपीडिया,* तटस्थता पर आलेख)। आदर्श प्रेक्षक पूर्ण रुप से बौद्धिक, तटस्थ, एवं कल्पनाशील होता है। एक आदर्श प्रेक्षक सभी चीजों का परीक्षण करता है और प्रत्येक के बारे में एक आदर्श अवधारणा रखता है। रिचर्ड बी. ब्रेन्ड मानते हैं कि आदर्श प्रेक्षक होने के लिए सभी नैतिक प्रासंगिक तथ्यों का ज्ञान होना आवश्यक विशेषता नहीं है। वह कहते हैं, "...हम विशेषताओं को और कम कर सकते हैं। आदर्श प्रेक्षक को इन (नैतिकरूप से प्रासंगिक), तथ्यों को जानने की आवश्यकता नहीं हैय उसका केवल उनके, उचितरूप से और पूर्णतः स्पष्ट ढंग से, तथ्य होने पर विश्वास करना पर्याप्त है और यह उनके ज्ञान से भिन्न है।" (रिचर्ड बी. ब्रेन्ड, "दि डेफिनिशन ऑफ एन "आइडियल ऑब्जर्वर" थ्योरी इन एथिक्स", 1955)। एडम स्मिथ एवं डेविड ह्यूम आदर्श प्रेक्षक सिद्धान्तके प्राचीन रूप को प्रस्तावक के रूप में जाने जाते हैं और रोडरिक फ्रिथ आदर्श प्रेक्षक सिद्धान्तके नवीन रूप के प्रस्तावक माने जाते हैं।

ब) दैवीय समादेश या आदेश सिद्धान्त

दैवीय आदेश सिद्धान्त के अनुसार नैतिकता ईश्वर पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार नैतिक तथ्य ईश्वर के आदेशों से निर्धारित होते हैं। अतः, नैतिक दृष्टि से उचित कर्म वो है जो ईश्वर के आदेश के अनुरूप है। इस सिद्धान्त को मानने वाले दार्शनिकों का मानना है कि ईश्वर देश और काल की सीमाओं के परे है। इन दैवीय आदेशों की विषय–वस्तु प्रत्येक धर्म के अनुसार भिन्न–भिन्न है। परन्तु इन सभी धर्मों की मान्यता है कि नैतिकता और नैतिक आदेश अंततः ईश्वर पर आधारित होते हैं। थॉमस एक्विनास, रॉबर्ट एडम्स और फिलिप क्विन इस सिद्धान्त के समर्थक हैं।

10.3.1.3 त्रुटि का सिद्धान्त

त्रुटि का सिद्धान्त के अनुसार नैतिक कथन प्रतिज्ञप्ति (तार्किक कथन) हो सकते हैं, लेकिन सभी नैतिक प्रतिज्ञप्तियां असत्य होती हैं। इसका आशय है कि जब भी हम किसी नैतिक कथन का प्रयोग करते है तो सामान्यतः हम त्रुटि में हैं। इस सिद्धान्त के प्रधान प्रस्तावक जे. एल. मैकी थे। उनका मानना है कि हमारी नैतिक अभिव्यक्तियां ऐसे उन विश्वासों की अभिव्यक्तियां हैं जिनका सत्यता मूल्य होता है (सत्यता–मूल्यक विश्वासय विश्वास जिसे या तो सत्य या फिर असत्य की कोटि में रखा जा सकता है)। परन्तु वे यथार्थवाद का खण्डन करते हैं, जिसका यह मानना है कि ये अभिव्यक्तियां सर्वदा बाह्य जगत (बाह्यार्थ; बाह्य अर्थ) से सम्प्रेषण रखती हैं। हमारे नैतिक निर्णय या कथन में सर्वदा गलती या त्रुटि होने की सम्भावना होती है। बिना नैतिक गुण के, सत्यता–मूल्यक विश्वास के पदों में जगत का विवरण देना सम्भव नहीं है, इसीलिए वह इस विचार को नकारते हैं कि ये विश्वास सत्य हो सकते हैं यदि वे किसी नैतिक गुण से सम्बन्धित नहीं हैं। त्रुटि के सिद्धान्त के अन्तर्गत नैतिक उच्छेदवाद या शून्यवाद एवं नैतिक संशयवाद आते हैं।

बोध प्रश्न II

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नैतिक संज्ञानवाद को परिभाषित करें।

.....

.....

.....

.....

2) नैतिक संज्ञानवाद के अन्तर्गत कौन से सिद्धान्त आते हैं? संक्षेप में परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

10.3.2 नैतिक असंज्ञानवाद

नैतिक असंज्ञानवाद एक अधिनीतिशास्त्रीय मत है जिसके अनुसार नैतिक वाक्य किसी विश्वास या प्रतिज्ञप्ति को अभिव्यक्त नहीं करते और इसलिए उन्हें सत्य या असत्य नहीं कहा जा सकता। असंज्ञानवादी नीतिशास्त्रियों के अनुसार, जब व्यक्ति नैतिक कथनों का उच्चारण करते है तो वे मन की स्थिति, अर्थात् विश्वास, अथवा संज्ञान या बोध को अभिव्यक्त नहीं करते। अपितु, वे असंज्ञानात्मक अभिवृत्तियों जैसे इच्छाओं, प्रवृत्तियों या संवेदनाएं भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, जब कोई कहता है कि "हत्या करना गलत है" तो वह हत्या के प्रति अपनी असहमति को अभिव्यक्त करता है। असंज्ञानवादी ये मानते हैं कि नैतिक कथनों या दावों (नैतिक कृत्य के प्रति सहमति और असहमति) का सत्यता मूल्य नहीं होता है।

मनोवैज्ञानिक असंज्ञानवादी दार्शनिकों के अनुसार नैतिक वाक्य विश्वासों पर आधारित नहीं होते अपितु उनका आधार भावनायें, इच्छायें, संवेदनाएं, पसंद एवं मनोभाव होते हैं। अर्थ सम्बन्धी असंज्ञानवादी दार्शनिकों के अनुसार, जब हम कहते हैं कि "हत्या गलत है" तब हम जगत के किसी नैतिक गुण का वर्णन नहीं कर रहे होते हैं, अपितु हम हत्या के कृत्य के प्रति हमारी भावना या मनोभाव को अभिव्यक्त कर रहे होते हैं। भावनाओं और मनोभावों या अभिवृत्तियों का सत्यता मूल्य नहीं होता क्योंकि वे जगत के किसी वस्तु के बारे में कोई तथ्य नहीं बताते हैं।

नैतिक असंज्ञानवाद अ–वर्णनात्मक वाक्–कृत्य (नॉन डिक्लेरेटिव स्पीच एक्ट) को स्वीकारता है, जिसका अर्थ हुआ कि नैतिक कथनों या दावों का अस्तित्व बिना सत्यता मूल्य के हो सकता है। असंज्ञानवादी (अ–वर्णनात्मक वाक्–कृत्य) का उदाहरण है "मत मारो" का उच्चारण । इस उच्चारण कोई सत्यता मूल्य नहीं है।

सम्वेगवाद, अर्ध–यथार्थवाद और सार्वभौमिक परामर्शवाद आदि वो सिद्धान्त हैं जो नैतिक असंज्ञानवाद के अन्तर्गत आते हैं।

10.3.2.1 सम्वेगवाद

सम्वेगवाद के अनुसार नैतिक वाक्य केवल किसी व्यक्ति की भावनाओं या अभिवृत्तियों को व्यक्त करते हैं। ए. जे. एयर एवं सी. एल. स्टीवेन्सन सम्वेगवाद के समर्थक हैं।

सम्वेगवाद के अनुसार, नैतिक कथन "हत्या गलत है" केवल हत्या के कृत्य के विरुद्ध हमारी भावनाओं की अभिव्यक्ति है। यह हत्या के प्रति हमारी नकारात्मक वृत्ति को एक औपचारिक भाषाई स्वरूप देती है। वास्तव में, सम्वेगवाद को "छिः/शाबाश" वाला अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त भी कहा जाता है क्योंकि जब हम कहते है कि कोई कार्य नैतिक रूप से उचित नहीं है तो हम उसकी भर्त्सना करते है और जब उचित है तो उसे शाबाशी देते हैं। (मार्क डिम्मोक और एन्ड्रयु फिशर, एथिक्स फॉर ए–लेवेल)

ए.जे.एयर के अनुसार नैतिक कथनों का कोई तथ्यात्मक अर्थ नहीं होता है। नैतिक उच्चारण या वाचन या कथन प्रतिज्ञप्ति या तर्क–वाक्य नहीं होते हैं। इसीलिए नैतिक उच्चारणों को सत्य या असत्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता है। वह आलेख "दि इमॉटिव थ्योरी ऑफ एथिक्स" में कहते हैं,

किसी कथन में एक नैतिक प्रतीक की उपस्थिति उसमें तथ्यात्मक रूप से कुछ भी नहीं जोड़ती। अतः यदि मैं किसी से कहता हूँ कि "तुमने वो पैसे चुराकर गलत किया" तो मैं तथ्यात्मक रूप से केवन उतना ही कहता हूँ कि "तुमने वो पैसे चुराये" ये जोड़ते

हुए कि ये कार्य गलत है हम इसमे कोई तथ्य नहीं जोड़ते हैं। ये केवल इस कार्य के प्रति अपनी नैतिक असहमति को प्रकट कर रहा हूँ। ये वैसा ही है जैसे मैने "तुमने वो पैसे चुराये" इस वाक्य को डरावनी आवाज से कहा होता या लिखते समय कुछ विशेष विस्मयबोधक चिन्हों का प्रयोग किया होता। हमारा स्वर या चिन्ह उस कथन के शाब्दिक अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं लाते । वो केवल ये दर्शाते हैं कि उस वाक्य की अभिव्यक्ति वक्ता के हृदय में कुछ विशेष भावनाओं को जन्म देती है । यदि मैं अपने कथन को एक सामान्य रूप देते हुए कहूँ कि "पैसे चुराना गलत है" तो मैं एक ऐसे वाक्य का निर्माण करता हूँ जिसका कोई तथ्यात्मक अर्थ नहीं है अर्थात् एक ऐसा तर्कवाक्य जो सत्य या असत्य नहीं हो सकता। ये वैसा ही है जैसे मेरा लिखना "पैसे चुराना !!" जहाँ विस्मयबोधक चिन्ह के आकार और मोटाई से, प्रयोग के प्रथा के अनुसार ये प्रकट हो जाता है कि एक विशेष प्रकार की नैतिक असहमति की भावना व्यक्त की जा रही है। ये स्पष्ट है कि यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं कहा जा रहा है जिसे सत्य या असत्य कहा जा सके। (*दि इमोटिव थ्योरी ऑफ एथिक्स,* पृष्ठ 124)

इस प्रकार एयर ये तर्क देते हैं कि नैतिक कथन हमेशा व्यक्ति–विशेष से जुड़े होते है और इनमें सत्यता–मूल्य का अभाव होता है। सी. एल. स्टीवेन्सन भी एयर के विचारों से प्रभावित होकर ये मानते हैं कि नैतिक वाक्य वक्ता की भावनाओं को व्यक्त करते हैं।

10.3.2.2 अर्ध–यथार्थवाद

अर्ध–यथार्थवाद वो अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है जो ये तर्क देता है कि नैतिक उच्चारण सम्वेदनात्मक अभिवृत्तियों या सम्वेदनाओं का प्रक्षेपण है जिससे कि सम्वेदनाएं वास्तविक (यथार्थ) गुण हों। नैतिक उच्चारण प्रतिज्ञप्तियों को अभिव्यक्त नहीं करते हैं। इस मत को साइमन ब्लैकबर्न द्वारा समर्थन दिया गया है। उनका मानना है कि यह सम्भव है कि नैतिक कथनों से सम्प्रेषण के लिए जगत में किसी नैतिक तथ्य का अस्तित्व न हो, भाषाई तौर पर नैतिक कथन इस तरह व्यवहार करते हैं जैसे कि वे तथ्यात्मक दावे हों और इसलिए उन्हें "सत्य" अथवा "असत्य" से सम्बद्ध करना उचित है।

10.3.2.3 सार्वभौमिक परामर्शवाद

सार्वभौमिक परामर्शवाद वो अधि नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है जिसके अनुसार नैतिक वाक्य आदेशों या प्रेरणाओं के समान कार्य करते हैं और ये आदेश सार्वभौमिक होते हैं। आर. एम. हेयर इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हैं। उनका मानना है कि कोई भी नैतिक उच्चारण भावनात्मक या सम्वेगात्मक सहमति या असहमति से कहीं अधिक व्यक्त करता है। नैतिक उच्चारण विषयिनिष्ठ परामर्श को अभिव्यक्त करते हैं। वे परामर्श की प्रकृति के होते हैं। जब कोई किसी नैतिक निर्णय या कथन का उच्चारण करता है, तो वह चाहता है कि अन्य व्यक्ति भी इस नैतिक निर्णय के अनुसार कार्य करे। उदाहरणार्थ, अ कहता है कि "आत्महत्या नैतिक रुप से अनुचित है" तो इसका अर्थ है कि अ दूसरों को आत्महत्या के समर्थन करने या उसके पक्ष में निर्णय लेने से रोकना चाहता है। परामर्शवाद नैतिक वक्तव्यों को कर्म–निर्धारक आदेशों के रुप को पाने का प्रयास है। नैतिक उच्चारण या वक्तव्य जैसे "सत्य बोलना उचित है", का तात्पर्य कुछ इस तरह है कि "सत्य बोलो"। हेयर कहते हैं कि नैतिक कथन सार्वभौमिक किये जा सकने योग्य होते हैं, जिसका तात्पर्य है कि वे वस्तुनिष्ठ मूल्य रखते हैं।

बोध प्रश्न III

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नैतिक असंज्ञानवाद को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) नैतिक संज्ञानवाद और नैतिक असंज्ञानवाद में भेद कीजिए ।

.....

.....

.....

.....

10.4 सारांश

पिछले खण्डों में ये दिखाया गया है कि किस प्रकार अधिनीतिशास्त्र नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र को आधार प्रदान करता है। अधिनीतिशास्त्र नीतिशास्त्र की वो शाखा है जो नैतिक पदों और नैतिक आधारों या स्थापनाओं की प्रकृति और अर्थ का अन्वेषण या अन्वीक्षा करती है। इसे मोटे तौर पर दो शाखाओं में विभाजित किया जाता है :

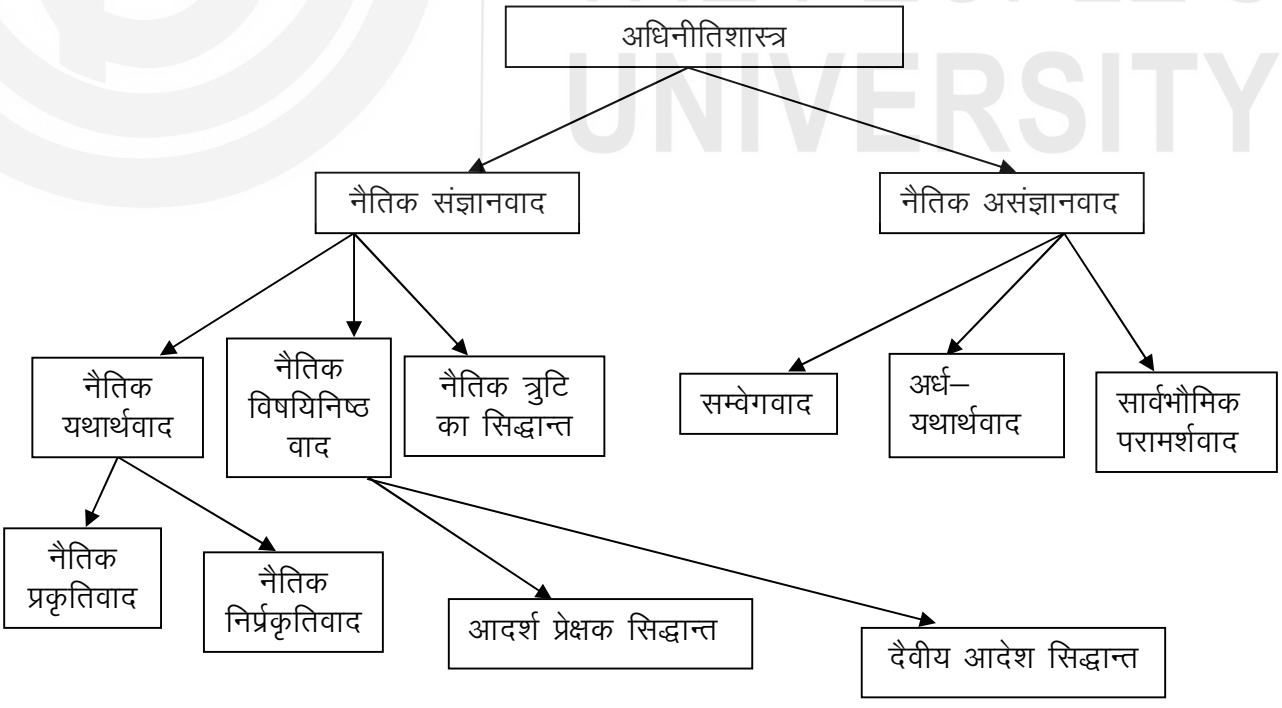

नैतिक संज्ञानवाद एवं नैतिक असंज्ञानवाद जिन्हें फिर अन्य सिद्धातों में विभाजित किया जाता है। ये सभी सिद्धान्त (नैतिक संज्ञानवाद व नैतिक असंज्ञानवाद को सम्मिलित

करते हुए) नीतिशास्त्र का आधार बनाते हैं। ये नीतिशास्त्र के प्रमुख शब्दों और प्रत्ययों जैसे "शुभ" "उचित" आदि को परिभाषित करने का प्रयास करते हैं। वे यह भी दर्शाने का प्रयास करते हैं कि हमें नैतिक तथ्यों का ज्ञान किस प्रकार होता है। विभिन्न अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त इस प्रश्न का उत्तर कि "क्या नैतिक कथनों का सत्यता मूल्य होता है?" अलग अलग प्रकार से देते हैं। नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र के सिद्धान्त इन अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धांतों के अन्तर्गत आते हैं। नीचे दिये गये चित्रात्मक निरूपण के द्वारा हम विभिन्न सिद्धान्तों और उनके वर्गीकरण को समझ सकते है।

10.5 कुंजी शब्द

मूलभूत : मूलभूत से यहाँ अर्थ है कोई ऐसा विचार या सिद्धान्त जिस पर कुछ अन्य आधारित हो। जैसे, अधिनीतिशास्त्र वह मूल या आधार है जिस पर नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र का आधारित हैं।

सत्य–मूलक : इसका अर्थ है कि किसी कथन का सत्यता मूल्य है और वह सत्य या असत्य बतौर वर्णित किया जा सकता है।

वस्तुनिष्ठ (मन–स्वतंत्र) तथ्य : वस्तुनिष्ठ, मन – स्वतंत्र तथ्य होने का अर्थ है कि इन तथ्यों का अस्तित्व मन पर आधारित नहीं है। अपितु वे बाहरी जगत में अस्तित्वमान हैं। उन्हें वस्तुनिष्ठ या आनुभविक रुप से जाना जा सकता है।

10.6 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

एयर ए. जे. *लैंग्वेज, ट्रूथ एण्ड लॉजिक.* डोवर पब्लिकेशन. न्यू यॉर्क, 1952.

एयर, ए. जे. "दि इमोट्व थ्योरी ऑफ एथिक्स." इन मॉरल फिलोसॉफीः सिलेक्टेड रीडिंग्स. सेकेण्ड एडिशन. एडिटिड बाई जॉर्ज शेर. हर्कॉर्ट–ब्रेसः फॉर्ट वर्थ, टीएक्स, 1996. पृ. 120–128.

ब्रेन्ड, रिचर्ड बी. "दि डेफिनिशन ऑफ एन "आइडियल ऑब्जर्वर थ्योरी इन एथिक्स." फिलोसॉफी एण्ड फिनोमिनोलॉजिकल रिसर्च, 1955, वो. 15/3, पृ. 407–413. एस्सेस्ड https://www-jstor-org/stable/2103510.

डिम्मोक, मार्क एण्ड एंड्रियू फिशर. *एथिक्स फॉर ए लेवल.* कैम्ब्रिजः ओपन बुक पब्लिशर्स, 2017.

फिशर, एंड्रियू. *मेटाएथिक्सः एन इनट्रोडक्शन.* न्यू यॉर्कः रूटलेज, 2011.

मैकी, जे.एल. *एथिक्सः इनवेंटिंग राईट एण्ड रॉन्ग.* पैंग्युइन बुक्स, 1977.

मूर, जी. ई. *प्रिंसीपिया एथिका.* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1903.

मैकक्लोस्कि, एच. एल. मेटा एण्ड नोर्मैटिव्स एथिक्स. द हेगः मार्टिनुफ निझोफ, 1969.

श्रोडर, मार्क. *नॉनकोग्निटिविज्म इन एथिक्स.* न्यू यॉर्कः रूटलेज, 2010.

द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ एथिकल थ्योरी, एडिटिड बाई डेविड कॉप. न्यू यॉर्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006.

ऑनलाइन संसाधनः

प्लेटो स्टेनफॉर्ड एन्साइक्लोपीडिया ऑफ फिलोसॉफी, "मेटाएथिक्स" पर आलेख।

प्लेटो स्टेनफॉर्ड एन्साइक्लोपीडिया ऑफ फिलोसॉफी, "इम्पार्सियालिटी" पर आलेख।

10.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) नीतिशास्त्र को सामान्यतः तीन प्रमुख शाखाओं में विभाजित किया जाता है : नियामक नीतिशास्त्र, अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र एवं अधिनीतिशास्त्र। नियामक नीतिशास्त्र हमारे कर्मों के उचित या अनुचित होने के मापदण्डों की व्याख्या करता है। ये इस बात का अध्ययन है कि वो क्या हो जो हमारे कार्यों को उचित या अनुचित बनाता है। दूसरी ओर, अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र नैतिक सिद्धांतों को विशेष परिस्थितियों में आरोपित करने का प्रयास करता है। इसके अन्तर्गत में आरोपित करने का प्रयास करता है। इसके अन्तर्गत हम गर्भपात, भ्रूण हत्या, पशुओं के अधिकार, मृत्युदण्ड और मानव प्रतिरूपण जैसे विशिष्ट विवादास्पद मुद्दों का परीक्षण करते हैं जहाँ एक ओर नियामक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र इस बात पर केन्द्रित है कि क्या नैतिक दृष्टि से उचित है और हमें क्या करना चाहिए, अधिनीतिशास्त्र का कार्य स्वयं नैतिकता को समझना है। अधिनीतिशास्त्र, आदर्श मूलक नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र को आधार प्रदान करती है।

बोध प्रश्न II

1) नैतिक संज्ञानवाद एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है जिसके अनुसार

   (1) नैतिक निर्णय हमारे विश्वासों को व्यक्त करते हैं और (2) इनका सत्यता मूल्य होता है, अर्थात् ये सत्य अथवा असत्य हो सकते हैं।

2) नैतिक संज्ञानवाद के अन्तर्गत नैतिक यथार्थवाद, नैतिक विषयिनिष्ठवाद एवं त्रुटि का सिद्धान्त आते हैं। नैतिक यथार्थवाद के अनुसार नैतिक कथन किसी विश्वास को व्यक्त करते हैं और ये विश्वास जगत के मन से स्वतंत्र तथ्य हैं। इस सिद्धान्तके दो प्रकार हैं, नैतिक प्रकृतिवाद अथवा नैतिक निर्प्रकृतिवाद। दूसरी ओर, नैतिक विषयिनिष्ठवाद के अनुसार नैतिक कथनों की सत्यता व असत्यता व्यक्तियों के अभिवृत्तियों और संवेगों पर आधारित होती है। यहाँ नैतिक वाक्य को व्यक्तियों की भावनाओं, मनोभावों और मत के समान माना गया है। नैतिक विषयिनिष्ठवाद दो अन्य सिद्धान्तों का आधार हैः आदर्श प्रेक्षक सिद्धान्त और दैवीय आदेश सिद्धान्त। और अंत में, त्रुटि के सिद्धान्तके अनुसार नैतिक कथन तथ्यात्मक वाक्य हो सकते है परन्तु सभी नैतिक कथन असत्य होते हैं।

बोध प्रश्न III

1) नैतिक असंज्ञानवाद एक अधिनीतिशास्त्रीय मत है जिसके अनुसार नैतिक वाक्य किसी विश्वास या मत को व्यक्त नहीं करते और इसलिए वे सत्य या असत्य नहीं होते। असंज्ञानवादी दार्शनिकों के अनुसार जब लोग कोई नैतिक वाक्य कहते हैं तो वो किसी मनः स्थिति या विश्वास को व्यक्त नहीं करते बल्कि ये असंज्ञानवादी मनोभावों जैसे भावनाओं और संवेगों को व्यक्त करते है ।

2) नैतिक संज्ञानवाद के अनुसार नैतिक निर्णय हमारे सत्यता–मूलक विश्वासों को व्यक्त करते हैं। दूसरी ओर नैतिक असंज्ञानवाद के अनुसार नैतिक वाक्य विश्वास या मत को व्यक्त नहीं करते और इसीलिए उन्हें सत्य या असत्य नहीं माना जा सकता।

इकाई 11 नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और निर्प्रकृतिवाद*

रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 परिचय

11.2 नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद

11.3 नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद

- 11.3.1 जी. ई. मूर का प्रकृतिवाद दोष
- 11.3.2 मुक्त प्रश्न युक्ति (ऑपिन क्वेश्चन आर्ग्यूमेन्ट)
- 11.3.3 अंतः प्रज्ञावाद

11.4 सारांश

11.5 कुंजी शब्द

11.6 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है,

- अधिनीतिशास्त्र के सिद्धांतो के रूप में नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद की व्याख्या करना,
- उनके बीच एक महत्वपूर्ण भेद को चिन्हित करना,
- यह दिखाना कि नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद अधिनीतिशास्त्र के निम्न प्रश्नों को किस प्रकार समझते हैं – क्या कोई नैतिक तथ्य होते है? यदि नैतिक तथ्य है, तो उनका उद्‌गम क्या है? और यदि कोई नैतिक तथ्य है तो हमें उनका ज्ञान किस प्रकार होता है? जब लोग 'शुभ' और 'उचित' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं तो उनका निश्चित आशय क्या है?

11.1 परिचय

नैतिक चिंतन हमारे जीवन का जीवनदायी आयाम है। अपने दैनिक जीवन में हम विभिन्न नैतिक प्रश्नों का सामना करते हैं जैसे – क्या हमारे कर्म उचित हैं या अनुचित? शुभ हैं या अशुभ? हमारे चरित्र के कुछ गुण सद्‌गुण हैं या अवगुण? और वो क्या है जो किसी कर्म को शुभ या अशुभ, उचित या अनुचित बनाता है? इन अधिनीतिशास्त्रीय प्रश्नों के अधिनीतिशास्त्र के विभिन्न सिद्धांतों में अलग–अलग उत्तर मिलते हैं। अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धांतों को मुख्यतः दो शाखाओं में बांटा गया है – संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र या नैतिक संज्ञानवाद एवं असंज्ञानात्मक नीतिशास्त्र या नैतिक असंज्ञानवाद। संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र के अनुसार नैतिक वाक्यों के द्वारा जिन तथ्यों को व्यक्त किया जाता है उनका सत्यता मूल्य होता है। इसलिए ये सत्य अथवा असत्य

* सुश्री सुरभि उनियाल, विद्यावाचस्पति शोधक, दर्शन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय दिल्ली,
अनुवादक : डॉ. शिल्पी श्रीवास्तव, सहायक प्राध्यापिका, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली

हो सकते हैं। वहीं दूसरी ओर असंज्ञानात्मक नीतिशास्त्र के अनुसार नैतिक वाक्य विश्वासों को अभिव्यक्त नहीं करते।

संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र के अनुसार नैतिक भाषा के द्वारा हम जगत के स्वरूप के बारे में नैतिक तथ्यों को व्यक्त करते हैं। ये मानना कि किसी के प्राण लेना अनुचित है का अर्थ है कि हम ये मानते हैं कि वाक्य 'किसी के प्राण लेना अनुचित है' एक सत्य है। इस प्रकार, नैतिक भाषा का प्रयोग संसार का विवरण देने के लिए होता है, और इसलिए नैतिक वाक्य सत्य या असत्य हो सकते हैं। संज्ञानवादियों अनुसार, नैतिक कथन या वाक्य विवरणात्मक तथ्य प्रस्तुत करते हैं और इसीलिए उनकी सत्यता बाह्य जगत पर आधारित होती है। जब हमारा विवरण (नैतिक दावों या निर्णयों में उपस्थित विवरण) बाह्य जगत (बाह्य जगत में उपस्थित तथ्य) के अनुरूप ('यथा तथ्य', जो जैसा है उसका वैसा ही निरूपण) होता है तो हमारे नैतिक दावे या निर्णय सत्य होते हैं अन्यथा असत्य। नैतिक यथार्थवाद, व्यक्तिनिष्ठ नीतिशास्त्र एवं त्रुटि का सिद्धान्त संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न सिद्धान्त है।

नैतिक यथार्थवाद या नैतिक वर्णनात्मक सिद्धान्त के अनुसार नैतिक कथन विश्वास को अभिव्यक्त करते हैं और ये कथन जगत के सन्दर्भ में एक मन से स्वतंत्र तथ्य हैं। वर्णनात्मक सिद्धान्त के अनुसार नैतिक गुण वास्तविक, वस्तुनिष्ठ गुण हैं जो कि नैतिक मूल्यांकन के उपयुक्त विषय हैं। ये नैतिक गुण जगत के विशुद्ध अंग हैं। नैतिक यथार्थवाद नैतिक गुणों और प्राकृतिक गुणों के बीच के सटीक सम्बन्ध को समझाने का प्रयास करता है। प्राकृतिक गुण वो गुण हैं जिन्हें हम इन्द्रिय अनुभव और वैज्ञानिक अन्वेषण द्वारा पहचानते हैं। ये दो अलग–अलग मतों की ओर ले जाता हैः नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद।

नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद दोनों ही नैतिक यथार्थवाद के प्रकार हैं। नैतिक प्रकृतिवाद के अनुसार वस्तुनिष्ठ एवं प्राकृतिक नैतिक गुणों का अस्तित्व है और उन्हें अनुभव के द्वारा जाना जा सकता है। जबकि नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक गुण प्राकृतिक गुणों से सर्वथा भिन्न हैं।

आगामी खण्डों में हम नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद पर विस्तार में चर्चा करेंगे।

11.2 नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद

नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवादियों का मानना है कि प्राकृतिक नैतिक गुण और सम्बन्धों का अस्तित्व होता है। उनके अनुसार, नैतिक गुण जैसे शुभ, न्याय, उचित, इत्यादि प्राकृतिक हैं। अतरू प्रकृतिवादी नीतिशास्त्र के अनुसार, नैतिक वाक्यों का प्रयोग ऐसी प्रतिज्ञप्तियों (तर्क–वाक्यों; तार्किक कथनों) को व्यक्त करने के लिए होता है जो जगत की वास्तविक (सत्) और वस्तुनिष्ठ विशेषताओं की सहायता से सत्य बनते हैं। नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक मूल्य और नैतिक कर्तव्य जगत के विज्ञान आधारित, प्राकृतिक मत के अनुसार उचित है। "प्रमुख रूप से यह मानता है, (अ) कि नैतिक दावे जैसे मनुष्यों की अच्छाई व उनके चारित्रिक विशेषताएं और अन्य चीजें, जैसे हमारे कर्मों की उचितता या अनुचितता प्राकृतिक गुण हैं और ये उसी प्रकार के गुण हैं, जो वैज्ञानिक अध्ययन का विषय हैं और (ब) इनका अध्ययन/अन्वेषण उसी सामान्य प्रक्रिया द्वारा होना चाहिए जैसे कि (विज्ञान द्वारा) (प्राकृतिक) उन गुणों का।"

वस्तुनिष्ठ होने के कारण नैतिक मूल्यों को भी ठीक उसी प्रकार जाना जा सकता है जैसे वैज्ञानिक तथ्यों को। नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवादी ये मानते है कि नैतिक मत अंततः प्राकृतिक जगत के लक्षणों के बारे में हैं जो कि स्वयं वैज्ञानिक अध्ययन का विषय हैं और इसीलिए, वे नैतिक यथार्थवाद का समर्थन करते है जिसके अनुसार नैतिक दावे केवल संवेगात्मक कथन नहीं होते अपितु इनका सत्यता मूल्य होता है।

नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद को अग्रलिखित मतों की समग्रता में समझा जा सकता हैः वस्तुनिष्ठ और मन से स्वतंत्र नैतिक तथ्यों का अस्तित्व है, नैतिक तथ्य प्राकृतिक तथ्य हैं; हम नैतिक दावों की सत्यता के बारे में वैसे ही जानते हैं जैसे प्राकृतिक विज्ञानों के दावों के बारे में, और हमारे नैतिक दावे प्राकृतिक विज्ञानों के विशिष्ट दावों के पर्याय हैं।

जॉन स्टुअर्ट मिल के उपयोगितावाद को बहुधा नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद का एक उदाहरण कहा जाता है। उपयोगितावाद के सिद्धान्त के अनुसार कोई कर्म नैतिक रूप से शुभ है यदि वो अधिक से अधिक सुख का कारण है और अशुभ या अनुचित है, यदि वो सुख देने मे असफल अथवा दुखः का कारण है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

11.3 नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद

नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद के अनुसार, नैतिक गुण और तथ्य प्राकृतिक गुणों और तथ्यों से भिन्न हैं। इसके अनुसार नैतिक वाक्य ऐसी प्रतिज्ञप्तियों को व्यक्त करते हैं जिनका सत्यता मूल्य होता है और इनकी सत्यता और असत्यता जगत के वस्तुनिष्ठ गुणों पर आधारित है जो कि मानव मन से स्वतंत्र है। नैतिक निर्प्रकृतिवाद का मानना है कि इन नैतिक गुणों को किन्हीं निर्नैतिक गुणों के रूप में परिभाषित/अपचयित नहीं किया जा सकता, जबकि नैतिक प्रकृतिवाद का मानना है कि नैतिक गुणों को निर्नैतिक गुणों या प्राकृतिक गुणों के रूप में परिभाषित या अपचयित किया जा सकता है

जी. ई. मूर निर्प्रकृतिवाद को मानने वाले प्रमुख दार्शनिक हैं। प्रिंसिपिया एथिका में जी. ई. मूर ने ये तर्क दिया है कि नैतिक गुणों को प्राकृतिक गुणों की तरह नहीं देखा जा सकता है। आम जीवन में (दैनन्दिन जीवन में), हम नैतिक गुणों (उदाहरण के लिए, शुभ या अच्छाई) को निर्नैतिक गुणों (उदाहरण के लिए, प्राकृतिक) से सह–सम्बन्धित करते हैं। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि नैतिक गुण और निर्नैतिक गुण प्रकृति

में अभिन्न हैं। सामान्यतः, हम कहते हैं कि 'अ शुभ है', का तात्पर्य है 'अ सुख देता है।' अथवा 'अ सुखकारी है।' इस तरह हम शुभ और सुख को अभिन्न बनाते हैं। मूर कहते हैं कि शुभ (या अन्य कोई नैतिक गुण) को अन्य किसी भी गुण से अभिन्न नहीं माना जा सकता है। जब हम नैतिक गुण को प्राकृतिक गुणों के रूप में परिभाषित करने का प्रयास करते हैं, तब हम 'प्राकृतिक दोष' कर रहे होते हैं। जब किसी नैतिक गुण को परिभाषित करने का प्रयास किया जाता है लेकिन परिभाषित नहीं किया जा सकता है। तब यह प्रश्न पूछा जाना शेष रह जाता है कि 'शुभ (या अन्य कोई नैतिक गुण) क्या है?' मूर इस परिस्थिति को 'मुक्त प्रश्न युक्ति' कहते हैं।

बोध प्रश्न II

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

11.3.1 जी. ई मूर का प्रकृतिवादी दोष

मूर के अनुसार शुभ (या अन्य किसी नैतिक गुण) की किसी भी प्राकृतिक या अप्राकृतिक गुण के रूप में व्याख्या करने का प्रयास सर्वथा दोषपूर्ण है। किसी भी प्राकृतिक गुण के रूप में शुभ की व्याख्या के प्रयास को मूर ने प्रकृतिवादी दोष का नाम दिया। उनके अनुसार शुभ या शुभता एक सरल प्रत्यय है और इसका विश्लेषण सम्भव नहीं है। शुभता के अंग नहीं हैं। इसलिए इसे अंगों के रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता है। मूर कहते हैं कि 'शुभ शुभ है', और इसे परिभाषित नहीं किया जा सकता है। नैतिक तथ्यों का अस्तित्व होता है जैसे x शुभ है, यह एक नैतिक तथ्य है कि यह है। मूर कहते हैं,

ये सत्य हो सकता है कि वे सभी वस्तुएं जो शुभ हैं वे अन्य कुछ भी हों, ठीक उसी प्रकार जैसे यह सत्य है कि सभी पीली वस्तुएं प्रकाश में निश्चित तरंगो को पैदा करती हैं। और यह तथ्य है, कि नीतिशास्त्र का लक्ष्य यह जानना है कि सभी वस्तुओं में अन्य कौन से गुण हैं जो शुभ हैं। परन्तु अनेक दार्शनिकों ने ये समझा है कि जब हम इन अन्य गुणों की बात कहते हैं तो हम इनके माध्यम से शुभ को ही परिभाषित कर रहे होते हैंय कि ये गुण "अन्य" न होकर, परमतः और समग्र रूप में शुभ के समान। ये विचार मेरे अनुसार प्राकृतिक दोष है और मैं इसका खंडन करता हूँ। (मूर, *प्रिंसिपिया एथिका*, खण्ड 10.3)

मूर के लिए, 'शुभ' एक सरल, अपरिभाष्य और निर्प्राकृतिक गुण है। उदाहरण के लिए, पीला एक सरल, प्राकृतिक गुण है। आप पीले से अनभिज्ञ व्यक्ति को पीला क्या है इसकी व्याख्या नहीं कर सकते हैं। पीला संसार के हमारे दृश्य–अनुभव का हिस्सा है। मूर के शब्दों में,

हम इसे (पीला) को, इसकी भौतिक समतुल्यता के वर्णन द्वारा परिभाषित करने का प्रयास कर सकते हैं; हम कह सकते हैं इसे देखने के लिए किस प्रकार की प्रकाश–तरंगदैर्ध्य की आवश्यकता सामान्य नेत्र को उद्दीप्त करने में है। लेकिन एक क्षण का विचार भी यह दिखाने के लिए पर्याप्त है कि ये प्रकाश– तरंगदैर्ध्य स्वयं में पीला नहीं हैं। ये वो नहीं है, जो हम देखते हैं। वास्तव में, हम उनका अस्तित्व कभी नहीं जान सकते हैं, बशर्ते हम भिन्न–भिन्न रंगों के मध्य उपस्थित विशेषताओं की भिन्नता को जानते हों। अधिक से अधिक हम यह कह सकते हैं कि ये तरंगदैर्ध्य (प्रकाश–कम्पन) वह हैं जो दिक में उस पीला से संवादित हैं जिस पीले को हम वास्तव में देखते हैं। (मूर, *प्रिंसिपिया एथिका*, खण्ड 10.2)

इसी तरह, हम 'शुभ' अथवा 'शुभता' को परिभाषित नहीं कर सकते हैंय इसे केवल (शुभता के कृत्यों में) दर्शाया या दिखाया जा सकता है।

11.3.2 मुक्त प्रश्न युक्ति (ऑपिन क्वेश्चन आर्ग्युमेन्ट)

मूर ने शुभ की निर्प्राकृतिक परिभाषा के समर्थन में 'मुक्त प्रश्न युक्ति' दिया था। शुभ के अपरिभाष्य होने के सन्दर्भ में उनके विचारों को मुक्त प्रश्न युक्ति के द्वारा समझा जा सकता है। इस तर्क के अनुसार क्या शुभ की किसी प्राकृतिक गुण या गुणों के समूह के सन्दर्भ में व्याख्या दी जा सकती है, यह एक साम्प्रत्ययिक तौर पर खुला प्रश्न है। मान लीजिये कोई शुभ को सुख के रूप में परिभाषित करता है। ये सत्य हो सकता है कि सुख अपने आप में शुभ वस्तु हो। परन्तु मूर के अनुसार ये फिर भी एक वास्तविक प्रश्न है, जिसका उत्तर वांछनीय है, कि क्या शुभ वही है जो सुख है। यदि ये परिभाषा की बात होती, अर्थात् यदि शुभ और सुख समानार्थी शब्द होते क्योंकि वे पारिभाषिक समतुल्य हैं, तो कोई खुला प्रश्न ही नहीं होता। शब्दों के अर्थ द्वारा ही समस्या का हल हो जाता। मूर की समस्या ये थी कि यदि एक स्वंयसिद्ध मूल्य (शुभ) का विश्लेषण निर्नैतिक (नॉन–मॉरल) पदों में किया जा सके, तब शुभ अपने आप में निर्नैतिक होकर रह जायेगा। परन्तु शुभ वह है जो वह है, कुछ अन्य नही।

मान लीजिए हम शुभ को 'अ' के रूप में परिभाषित करते हैं। हम अ पर अलग – अलग गुणों से आरोपित कर सकते हैं जो कि इसपे निर्भर करेगा कि हमारे अनुसार शुभ क्या है। यदि "अ" "सुखद एवं वांछनीय है" और हम ये प्रश्न करें कि "क्या जो सुखद और वांछनीय है, वह सुखद और वांछनीय है?" तो हम कोई खुला प्रश्न नहीं कर रहे। पर जब हम पूछते हैं कि "क्या जो सुखद और वांछनीय है वह शुभ भी है?" तो हम एक खुला प्रश्न पूछते हैं। ऐसा भी संभव है कि वे सभी वस्तुएं जो 'अ' हैं, शुभ हों। पर इसका अर्थ यह नही है की "अ" एवं "शुभ" एक ही है या समानार्थी है। यदि शुभ का अर्थ सुख है तो ये पूछना निरर्थक होगा कि 'क्या सुख शुभ है?' ये पूछना ऐसा ही होगा जैसे 'क्या सुख सुख है?' यह वास्तविक प्रश्न नहीं है (इसका उत्तर 'हाँ' ही हो सकता है)। परन्तु 'क्या सुख शुभ है?' एक वास्तविक प्रश्न है – जिसका अर्थ हाँ या ना दोनो में से कुछ भी हो सकता है। अतः शुभ सुख या किसी अन्य गुण से अभिन्न नहीं हो सकता है।

अब, कोई यह पूछ सकता है कि क्या कोई वस्तु है जिसमें शुभत्व का गुण है? इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि सुख शुभ है। परन्तु ऐसा कहने का अर्थ है कि हम यहाँ दो भिन्न चीजों की बात कर रहे है ना कि एक (एक तो सुख और दूसरी शुभ) उदाहरण के लिए, आप अपनी लम्बाई या वजन से अभिन्न नहीं हैं।

इस प्रकार मूर ने ये स्थापित किया कि नैतिक गुण प्राकृतिक गुणों से अभिन्न नहीं हैं। उनका मानना है कि नैतिक मूल्यों का अस्तित्व निर्नैतिक गुणों पर निर्भर करता है।

कोई भी चीज शुभ है क्योंकि उसमें शुभ बनाने वाले गुण है। यदि किसी वस्तु में वो गुण विशेष है तो निश्चय ही शुभ होगी। परन्तु शुभ के प्रत्यय को किसी निर्नैतिक (अथवा किसी अन्य नैतिक गुण) गुण में अपचयित नहीं किया जा सकता है। दयालुता, सज्जनता, विवेकशील और न्यायप्रिय होना किसी व्यक्ति में पाये जाने वाले नैतिक गुण हैं। परन्तु शुभ इनमें से किसी का भी समानार्थी नहीं है और ना ही शुभ की परिभाषा इन गुणों के माध्यम से दी जा सकती है। जब भी हम 'शुभ' की परिभाषा, मान लीजिए 'अ' के रूप में करते हैं, तब यह प्रश्न शेष रह जाता है कि, 'क्या अ वास्तव में शुभ है?' मूर इसे 'मुक्त या खुला प्रश्न युक्ति' कहते हैं।

11.3.3 अंतः प्रज्ञावाद

अंतः प्रज्ञावाद निर्प्राकृतिक नीतिशास्त्र का एक प्रकार है। यह अग्रलिखित प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करता है कि – यदि नैतिक गुण प्राकृतिक गुणों से भिन्न हैं तो हमें उनका बोध कैसे होता है? हम ये कैसे जानते है कि शुभ क्या है या अशुभ क्या है? इस सिद्धान्त के अनुसार हमें नैतिक गुणों का ज्ञान अन्तःप्रज्ञा द्वारा होता है। परंतु ये अतः प्रज्ञा या सहज बोध क्या है और हमें कैसे पता चलता है कि ये सत्य है? क्या हमारे पास नैतिक बोध के लिये कोई विशेष भाग है? मूर इन प्रश्नों को अनुत्तरित छोड़ देते हैंः "जब मैं इन कथनों को सहज बोध कहता हूँ, तो केवल ये कहना चाहता हूँ कि इनका प्रमाणीकरण सम्भव नहीं है। मैं इस बारे में कि, इनके बारे में हमारी चेतना के ढंग या उद्‌गम के बारे में मैं कोई निहितार्थ नहीं रखता।" (*प्रिंसिपिया एथिका*, अध्याय प्रथम)। उनका तर्क है कि ये कथन विश्लेषणात्मक रूप से सत्य नहीं हैं और ना ही हम इन्हें आनुभविक परीक्षण द्वारा जान सकते हैं। अतः ये संश्लेषणात्मक प्रागानुभविक ज्ञान (संश्लेषणात्मक यानि नया ज्ञान, प्रागानुभविक यानि हमारे अनुभव के पूर्व) का ही प्रकार है। मूर अन्तः प्रज्ञा को 'स्वयं–सिद्ध' प्रतिज्ञप्तियों के समानार्थी मानते हैं, क्योंकि शुभ के बारे में सत्य और असत्य के दावे की व्याख्या इस दावे को स्वीकारके ही की जा सकती है।

कोई इन स्वयं–सिद्ध दावों को सीधे ग्रहण कर सकता है क्योंकि ये स्वयं की सम्भाव्यता से ही सिद्ध हैं। हम इन दावों का क्रमशः विकास करते हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि सभी व्यक्ति सदा इसकी सत्यता से परिचित होते हैं। इन्हें जानने के लिए इन मुद्दों का स्पष्ट और विचारपूर्वक बोध आवश्यक है। ये नैतिक अन्तःप्रज्ञा स्वयः–सिद्ध हैं का तात्पर्य है कि इन्हें इन्द्रियों के द्वारा नहीं जाना जा सकता है। हमारे पास स्वयं–सिद्ध सत्य हैं जैसे गणित के सत्यय नैतिक अन्तःप्रज्ञा, अनिवार्य सत्यों की तरह स्वयं–सिद्ध है। अतः अंतः प्रज्ञावाद के अनुसार ये कहना आवश्यक नही है कि मानव बुद्धि मे अंतरू प्रज्ञा कि एक विशिष्ट शाखा है जो किसी परालौकिक शक्ति के समान सहज ही ये जान लेती है की कोई भी वस्तु या कार्य शुभ है या नहीं। यह केवल यह वर्णित करता है कि कुछ नैतिक निर्णय स्वयं–सिद्ध और संश्लेषणात्मक होते हैं।

बोध प्रश्न III

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) प्रकृतिवादी दोष क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) जी. ई. मूर के अनुसार 'शुभ' के प्रत्यय की व्याख्या दीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

11.4 सारांश

नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद और निर्प्रकृतिवाद नैतिक यथार्थवाद के प्रकार हैं जो कि संज्ञानात्मक नीतिशास्त्र के अन्तर्गत आता है। नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक गुण जैसे शुभ, न्याय, उचित आदि प्राकृतिक गुण हैं। इनके अनुसार नैतिक गुणों और प्राकृतिक गुणों में कोई भेद नहीं है। इसके विपरीत, नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक गुण प्राकृतिक गुणों के समान नहीं हैं।

11.5 कुंजी शब्द

दोषः इसका अर्थ है किसी प्रकार की त्रुटि या भ्रम की संरचना । इस इकाई इसका प्रयोग ये बताने के लिए किया गया है कि नैतिक गुणों को प्राकृतिक गुणों के समान मानने वाले तर्क एक भ्रम रचते हैं।

वस्तुनिष्ठः वो जो बाह्य जगत में स्थित है और इन्द्रियों द्वारा जाना जा सकता है। ये विज्ञान की विषय वस्तु हैं क्योंकि विज्ञान जगत में स्थित प्राकृतिक तथ्यों का अध्ययन करता है।

11.6 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

कॉप, डेविड. "व्हाई नेचुरलिज्म?". एथिकल थ्योरी एण्ड मॉरल प्रैक्टिस, 6/2, पेपर प्रेजेन्टिड टू दि एनुअल कॉन्फरेन्स ऑफ द ब्रिटिश सोसाईटी फॉर एथिकल थ्योरी, रीडिंग, 25–26, अप्रैल 2002 (जून, 2003), पृ. 179–200.

फिशर, एंड्र्यु. *मेटाएथिक्सः एन इंट्रोडक्शन.* न्यू यॉर्कः राउटलेज, 2011.

मूर, जी. ई. *प्रिंसिपिया एथिका.* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, 1903.

जैकब्स, जॉनाथन. *डायमेन्शन ऑफ मॉरल थ्योरीः एन इंट्रोडक्शन टू मेटाएथिक्स एण्ड मॉरल साय्कोलॉजी.* ऑक्सफोर्डः ब्लैक्वेल पब्लिशिंग, 2002.

कॉप, डेविड (एडि.). *द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ एथिकल थ्योरी.* न्यू यॉर्कः ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2006.

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद नैतिक यथार्थवाद का एक प्रकार है जो कि नैतिक संज्ञानवाद के अन्तर्गत आता है। इसके अनुसार नैतिक गुण व सम्बन्ध प्राकृतिक होते हैं। नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक वाक्य ऐसे कथनों को व्यक्त करते हैं जिनकी सत्यता मानव मत से स्वतंत्र, बाह्य जगत के वस्तुनिष्ठ गुणों पर निर्भर करती है।

बोध प्रश्न II

1) नीतिशास्त्रीय निर्प्रकृतिवाद के अनुसार नैतिक गुण व तथ्य प्राकृतिक गुणों एवं तथ्यों से सर्वथा भिन्न हैं। इसके अनुसार नैतिक वाक्य ऐसी प्रतिज्ञप्तियों को व्यक्त करते हैं जिनका सत्यता मूल्य होता है और इनकी सत्यता और असत्यता जगत के वस्तुनिष्ठ गुणों पर आधारित है जो कि मानव मन से स्वतंत्र है, परन्तु जगत के ये नैतिक लक्षण किसी भी निर्प्राकृतिक गुण में अपचयित नहीं किए जा सकते।

बोध प्रश्न III

1) जी. ई. मूर ने नीतिशास्त्रीय प्रकृतिवाद की आलोचना में प्रकृतिवादी दोष को प्रस्तावित किया। मूर के अनुसार 'शुभ' को किसी भी प्राकृतिक गुण के समानार्थी मानना प्राकृतिक दोष है।

2) जी. ई. मूर के अनुसार शुभ एक सरल, अपरिभाष्य, निर्प्राकृतिक गुण है । उन्होंने इसकी तुलना पीले रंग से की। पीला एक सरल प्रत्यय है और जिसने कभी ये रंग ना देखा हो उसको इसे समझ पाना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार 'शुभ' को परिभाषित नही किया जा सकता केवल उसको दिखाया या प्रदर्शित किया जा सकता है।

इकाई 12 विषयिनिष्ठवाद : डेविड ह्यूम*

रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 परिचय

12.2 परिभाषा

12.3 विभिन्न प्रकार के नैतिक विषयिनिष्ठवाद

12.4 डेविड ह्यूम का विषयिनिष्ठवाद

12.5 सारांश

12.6 कुंजी शब्द

12.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य है,

- नीतिशास्त्र के सन्दर्भ में विषयिनिष्ठवाद के अर्थ और इसकी पूर्वमान्यताओं को समझना,
- विषयिनिष्ठवाद के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या करना,
- डेविड ह्यूम के विषयिनिष्ठवादी अवधारणा को समझना।

12.1 परिचय

विषयिनिष्ठवाद या आत्मनिष्ठवाद (सब्जेक्टिविज्म) वह सिद्धान्त है जिसका मानना है कि ज्ञान मात्र विषयिनिष्ठ है और तत्सम्बन्धी (संवादित) बाह्य अथवा वस्तुनिष्ठ सत्य नहीं होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार हमारी मनोदशाएँ या मानसिक क्रियाकलाप ही जीवन के असंदिग्ध (प्रश्नों से परे) तथ्य हैं। दो प्रकार के विषयिनिष्ठवाद हैं– तत्त्वमीमांसीय विषयिनिष्ठवाद और नैतिक विषयिनिष्ठवाद। तत्त्वमीमांसीय विषयिनिष्ठवाद का मानना है कि सत् वही है जिसको कर्ता सत् के रूप में देखता है। और विषयी के प्रत्यक्ष से स्वतन्त्र कोई अन्य सत्ता (सत्) नहीं है। नैतिक विषयिनिष्ठवाद के अनुसार, हम नैतिक कथनों को तथ्यात्मक कथनों में समानयित (अपचयित) किया जा सकता है। वे तथ्यात्मक कथन "व्यक्तियों की अभिवृत्तियों और किसी संस्कृति या समाज या व्यक्तियों के समूह की रूढ़ियों बारे में" हो सकते हैं। यह इकाई नैतिक विषयिनिष्ठवाद की विशद चर्चा करेगी। जब व्यक्ति बहुधा नैतिक मानकों की चर्चा करते हैं, तो वे मुख्यतः उसकी उत्पत्ति से सरोकार रखते हैं अर्थात् नैतिक मानक कहाँ से निःसृत होते हैं या वह लोगों पर कैसे लागू होते हैं? क्या नैतिक मानदण्ड जगत से सम्बन्ध रखते

* सुश्री लिजाश्री हजारिका, विद्यावाचस्पति शोधक, दर्शन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, अनुवादक– डॉ. अमित कुमार प्रधान, सहायक प्राध्यापक, दर्शन विभाग, रामजस महाविद्यालय, दिल्ली

हैं, क्या वह व्यक्तियों से स्वतन्त्र हैं, या उनका स्रोत स्वयं व्यक्ति है? क्या नैतिक मूल्य वस्तुनिष्ठ हैं अथवा विषयिनिष्ठ? अधिनीतिशास्त्र का अध्ययन करते समय व्यक्ति विषय के अध्ययन हेतु किये गए अकादमिक विभाजनों से भ्रमित हो जाता है। अधिनीतिशास्त्र का अध्ययन करते समय हमको यह जेहन में रखना चाहिए कि अधिनीतिशास्त्र की विषय–वस्तु नैतिक दावों की उत्पत्ति नहीं, अपितु उनकी स्थिति है। इन प्रश्नों का उत्तर देते समय अधिनीतिशास्त्र नैतिक यथार्थवाद (कभी कभी इसे नैतिक वस्तुनिष्ठवाद या निरपेक्षवाद या सार्वभौमवाद कहा जाता है) और नैतिक प्रति–यथार्थवाद या नैतिक अयथार्थवाद (कभी कभी इसे नैतिक गैर–वस्तुनिष्ठवाद या नैतिक सापेक्षवाद कहा जाता है) में विभक्त हो जाता है। नैतिक प्रति–यथार्थवाद अधिनीतिशास्त्र का एक प्रकार है जो मानता है कि मानवीय मनस से स्वतन्त्र कोई नैतिक तथ्य नहीं होते हैं। नैतिकता वस्तुनिष्ठ नहीं है। नैतिक निर्णय अथवा मूल्यांकन करने वाले निर्णय स्पष्टतः मनस के आविष्कार हैं। नैतिक मानक व्यक्तियों की रुचियों, भावनाओं तथा अभिवृत्तियों पर निर्भर हैं । नैतिक प्रति–यथार्थवाद का मानना है कि नैतिक गुणधर्म मनस पर निर्भर हैं। यह सम्मिलित कर सकता है कि, (1) नैतिक गुणधर्म के अस्तित्व का पूर्ण निराकरण (2) नैतिक गुणधर्म अस्तित्ववान हैं किन्तु उनका अस्तित्व मनस पर निर्भर है। निम्नांकित रेखाचित्र नैतिक प्रति–यथार्थवाद के विभिन्न प्रकारों को दर्शाता है –

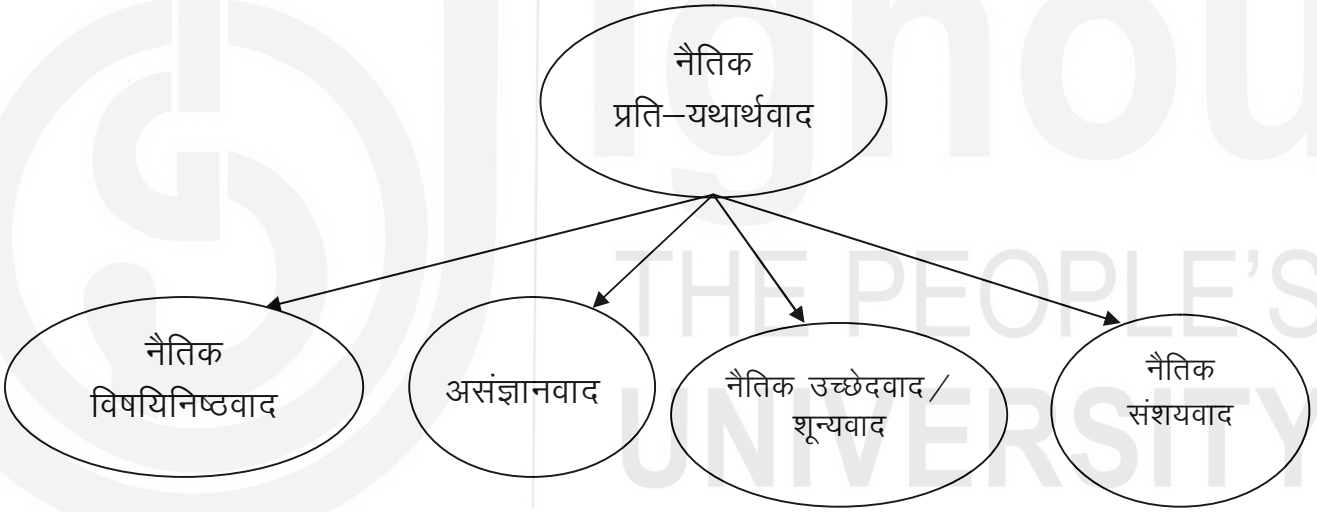

चित्र 12.1: यह रेखाचित्र नैतिक प्रति–यथार्थवाद के विभिन्न प्रकारों को दर्शाता है।

नैतिक विषयिनिष्ठवाद नैतिक प्रति–यथार्थवाद के विभिन्न प्रकारों में से एक है जिसका तर्क है कि नैतिक कथन विषयिनिष्ठ होते हैं। नैतिक विषयिनिष्ठवाद स्वीकार करता है कि नैतिक तथ्य अस्तित्ववान होते हैं परन्तु इसके यह यह भी मानता है कि नैतिक तथ्य किसी प्रकार से मानसिक क्रियाओं द्वारा निर्मित एवं निर्दिष्ट होते हैं। जगत में कुछ भी शुभ या अशुभ नहीं है वरन हमारा चिंतन शुभत्व एवं अशुभत्व के गुणों का आरोपण करता है। मोटे तौर पर, नैतिक विषयिनिष्ठवाद नैतिक सापेक्षतावाद का एक रूप है। नैतिक सापेक्षतावाद का मानना है कि नैतिक विश्वास एक विशिष्ट समाज अथवा व्यक्ति द्वारा स्वीकृत मानकों के सापेक्ष होता है। नैतिक सापेक्षतावाद मूल्यों के किसी वस्तुनिष्ठ नैतिक आधार अथवा किसी प्रकार के सर्वकालिक मूल्य में विश्वास नहीं रखता है। यह इस विचार को नकार देता है कि कोई एक सार्वभौमिक रूप से वैध नैतिकता है जिसे वैध नैतिक तर्कणा द्वारा अन्वेषित किया जा सके। नैतिक सापेक्षतावाद एक सिद्धान्त है जिसका कहना है कि कोई सार्वभौमिक (और वतुनिष्ठ) रूप से वैध मानक नहीं होते हैं, जिसके आधार पर किसी नैतिक कृत्य का मूल्यांकन

किया जा सके। नैतिक मानकों की वैधता अग्रलिखित दो बातों पर निर्भर करती है, (1) सांस्कृतिक स्वीकार्यता (लोकरीतिवाद) – नैतिक लोकरीतिवाद के अनुसार, नैतिक मानकों की वैधता एक विशिष्ट सांस्कृतिक समूह में स्वीकार्यता पर निर्भर करती है। (2) व्यक्तिगत चयन या प्रतिबद्धता (विषयिनिष्ठवाद) – विषयिनिष्ठवाद के अनुसार, नैतिक मानकों की वैधता व्यक्ति के क्रियाकलापों में स्वीकार्यता पर। हमें नैतिक विषयिनिष्ठवाद एवं नैतिक सापेक्षवाद को एक समान नहीं समझना चाहिए। पद्धति में दोनों भिन्न हैं। नैतिक विषयिनिष्ठवादियों के लिए, कर्म का नैतिक रूप से उचित या अनुचित होना वैयक्तिक–विषयी द्वारा उस कर्म के अनुमोदन या अननुमोदन पर निर्भर करता है। नैतिक सापेक्षवादियों के लिए, कर्म का नैतिक रूप से उचित या अनुचित होना व्यक्ति अथवा संस्कृति के अनुमोदन या अननुमोदन पर निर्भर करता है।

12.2 परिभाषा

नैतिक विषयिनिष्ठवाद एक अधिनैतिक सिद्धान्त है जिसका मानना है की नैतिक मानक अथवा सत्य विषयिनिष्ठ नैतिक निर्णयों को बनाने वाले वक्ता के मतों और भावनाओं पर निर्भर करते हैं। यह सिद्धान्त नैतिक वस्तुवाद का विरोधी है। नैतिक वस्तुवाद का मानना है की नैतिक निर्णयों की सत्यता अथवा असत्यता किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के विश्वासों अथवा भावनाओं पर निर्भर नहीं करती है। उदाहरणतः, झूठ बोलना नैतिक रूप से अनुचित है। कुछ कर्मों का उचित या अनुचित होना, मानवीय मत से स्वतन्त्र होता है। नैतिक विषयिनिष्ठवाद का मत है कि मूल्य महत्वपूर्ण रूप से एक व्यक्ति की आपातिक मनोवैज्ञानिक दशाओं पर निर्भर करता है। यह तर्क करता है कि नैतिक मूल्यांकन विषयिनिष्ठ नैतिक निर्णयों पर स्वतन्त्र रूप से निर्भर करता है, न कि अन्तः–विषयिनिष्ठ वस्तुनिष्ठ नैतिक निर्णयों पर। नैतिक विषयिनिष्ठवादियों के लिए, नैतिक तथ्यों का अस्तित्व नहीं है, वरन कर्मों के प्रति व्यक्तियों की अभिवृत्तियां होती हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि हम कब कह सकते हैं कि नैतिक निर्णय विषयिनिष्ठ है? एक नैतिक निर्णय विषयिनिष्ठ होगा यदि उसकी सत्यता वक्ता की अभिवृत्तियों, विश्वासों एवं प्राथमिकताओं के अनुरूप हो। उदाहरणतः, अ का एक बच्चा है। जब वह डिपार्टमेंटल स्टोर में था तो बच्चे ने शीतल पेय की एक बोतल उठा ली और उसे फर्श पर गिरा दिया। अ ने उसे अपने घुटनों पर झुकाया और उसकी पीठ पर ठीक से पिटाई की। एक महिला, जो यह देख रही थी, ने अ पर चीखते हुए हस्तक्षेप किया कि अपने बच्चे को पीटना भयावह है। अ का प्रत्युत्तर था, "आपको मुझे यह बताने का कोई अधिकार नहीं है कि मेरे अपने बच्चे के सन्दर्भ में क्या उचित है और क्या अनुचित।" इससे उसका आशय था कि सिर्फ अ ही निर्धारित कर सकता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित। नैतिक विषयिनिष्ठवाद का मानना है कि हमारे समस्त नैतिक निर्णय हमारे द्वारा चयनित नैतिक मानकों के सापेक्ष होते हैं। मेरे लिए नैतिक रूप से क्या उचित है वह इस बात पर निर्भर करता है कि नैतिक मानकों के सन्दर्भ में मेरी मान्यता (या वरीयता या चुनाव) क्या है। उदाहरण के तौर पर गर्भपात (भ्रूणहत्या) को मैं अपनी संस्कृति के अनुसार नैतिक रूप से स्वीकार्य मान सकता हूँ। इसी प्रकार आप गर्भपात को अपनी संस्कृति के अनुसार नैतिक रूप से अस्वीकार्य मान सकते हैं। नैतिक विषयिनिष्ठवाद का मानना है कि कोई वस्तुनिष्ठ (और सार्वभौमिक) नैतिक गुण या धर्म नहीं होते हैं और नैतिक कथन दरअसल इच्छाधीन या स्वेच्छाचारी होते हैं क्योंकि वह कूटस्थ या अपरिवर्तनीय सत्यों को अभिव्यक्त नहीं करते हैं। नैतिक कथनों का सत्यता–मूल्य प्रेक्षक की अभिवृत्तियों अथवा मान्यताओं से निर्धारित होता है। अतः एक कथन को नैतिक रूप से उचित मानने का आशय मात्र इतना है कि इस

रूचि के लोग उसका अनुमोदन करते हैं। सारभूत रूप से इसका मानना है कि नीतिशास्त्र में सत्यापनीयता एवं प्रमाणीकरण विषयी से ही आता है। नैतिक विषयिनिष्ठवादी मानते हैं कि कोई वस्तुनिष्ठ नैतिक मानक नहीं होते हैं। एक व्यक्ति जो दृष्टिकोण रखता है वही नैतिक मानकों का निर्धारक होता है। सामुदायिक अपील, ईश्वर अथवा व्यक्ति के दृष्टिकोण से इतर चीजें इत्यादि नैतिक मानकों का निर्धारण नहीं करती हैं। नीतिशास्त्र व्यक्ति के एक विशिष्ट दृष्टिकोण के सापेक्षिक है। वह व्यक्ति के मूल्यों का निर्णय नहीं करता वरन व्यक्ति का दृष्टिकोण उसके नैतिक परिप्रेक्ष्य का आधार होता है। कोई मूल्य दूसरे मूल्य से उच्चतर नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अपना दृष्टिकोण रखने का अधिकार है। इसका आशय यह है कि एक मूल्य के ऊपर दूसरे मूल्य को आरोपित नहीं किया जा सकता है। ज्यां जैक रूसो नैतिक विषयिनिष्ठवाद का समर्थन करते हैं। वे मानते हैं कि लोग यदि समाज द्वारा भ्रष्ट ना हों तो वह मूलतः अच्छे होते हैं और उचित कार्य करते हैं। वह 'हृदय के नियम' के समर्थक हैं। हृदय का नियम मानता है कि केवल हमारी अपनी भावनाएं ही बताती हैं कि क्या उचित है और क्या अनुचित नाकि समाज के अमूर्त सिद्धान्त।

एक नैतिक विषयिनिष्ठवादी का तर्क होगा कि कथन 'ब दुष्ट था' ब द्वारा किये गए कर्मों के प्रति एक घोर नापसंदगी अभिव्यक्त करता है परन्तु इससे यह निगमित नहीं होता है कि ब वस्तुतः दुष्ट था। दूसरा व्यक्ति जो इस कथन से नैतिक आधार पर पूर्णतः असहमत हो वह कोई बौद्धिक त्रुटि नहीं कर रहा है, वरन एक भिन्न अभिवृत्ति को अभिव्यक्त कर रहा है। वस्तुनिष्ठ नैतिक तथ्य नहीं होते हैं। नैतिक कथन एक विशिष्ट मुद्दे पर वक्ता द्वारा स्वीकृत अभिवृत्तियों सम्बन्धी तथ्यात्मक कथन हैं। अतः यदि कोई कहता है कि 'अहिंसा शुभ है' तो इसका आशय है कि वह इस मुद्दे पर अपनी अभिवृत्ति को प्रकट कर रहा है। इसका मानना है कि नैतिक कथन प्रतिज्ञप्तियां हो सकते हैं। नैतिक कथन सामाजिक या सांस्कृतिक नियमों अथवा वस्तुनिष्ठ या सार्वभौमिक सत्य के बजाय एक व्यक्ति की अभिवृत्तियों का वर्णन करते हैं। नैतिकता एक मत या विश्वास है जिसका तर्कों अथवा तथ्यों पर आधारित होना जरुरी नहीं है। इनकी मान्यता है कि हमारे नैतिक मत हमारी मनोवृत्तियों पर आधारित हैं, और इससे अधिक कुछ नहीं। वस्तुनिष्ठ रूप से कुछ भी उचित या अनुचित नहीं होता है। यह तथ्य है कि कुछ लोग समलिंगी होते हैं और कुछ विषमलिंगी परन्तु यह तथ्य नहीं है कि एक अच्छा है और दूसरा बुरा। किसी व्यक्ति का नैतिक रूप से उचित या अनुचित होना उसकी मनोवृत्ति पर निर्भर करता है। यह इस विचार की पुष्टि करता है कि कोई कर्म या वस्तु उचित या अनुचित नहीं हैं वरन हमारी भावनाओं की अभिव्यक्ति है। अतः हम किसी व्यक्ति के मत का उचित या अनुचित के रूप में निर्णय नहीं कर सकते हैं क्योंकि वह एक कर्ता का मत मात्र है। दृष्टान्ततः, धनार्जन के उद्देश्य से कोख का प्रयोग नैतिक रूप से स्वीकार्य हो सकता है और अस्वीकार्य भी हो सकता है। दोनों नैतिक निर्णय दो भिन्न मतों को अभिव्यक्त करते हैं जो किसी विशेष सन्दर्भ में दिए गए हैं। चूंकि ये दोनों केवल मत हैं अतः इनमें कोई विरोध नहीं है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नैतिक प्रति–यथार्थवाद या नैतिक अयथार्थवाद क्या है? नैतिक प्रति–यथार्थवाद के विभिन्न प्रकार क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

12.3 विभिन्न प्रकार के नैतिक विषयिनिष्ठवाद

नैतिक विषयिनिष्ठवाद के चार प्रकार हैं। वे हैं–

1) **सरल विषयिनिष्ठवाद (Simple Subjectivism)**– इस मत के अनुसार नैतिक कथन वस्तुनिष्ठ या सार्वभौमिक तथ्यों के बजाय भावनाओं, वरीयताओं या प्राथमिकताओं और मनोवृत्तियों को व्यक्त करते हैं। सरल विषयिनिष्ठवाद का तर्क है कि जब व्यक्ति नैतिक कथन करते हैं तो वह सम्बन्धित मुद्दे पर मात्र अपनी विषयिनिष्ठ भावनाओं को अभिव्यक्त कर रहे होते हैं। इसके अलावा एक सरल विषयिनिष्ठवादी का मानना होगा कि नैतिकता के बारे में हम जो कुछ कहते हैं वह उस मुद्दे पर हमारी भावनाओं की विवरणात्मक अभिव्यक्ति मात्र है। इस दृष्टिकोण के अनुसार नैतिकता सम्बन्धी कोई तथ्य नहीं है। अतः नैतिकता वस्तुनिष्ठ नहीं होती है वरन धारक पर निर्भर करती है। बतौर उदाहरण, जब एलेक्स कहता है कि विवाहेतर सम्बन्ध अनैतिक हैं तो वह मात्र अपनी अभिवृत्ति का वर्णन कर रहा है। वह मात्र इतना कह रहा है कि वह विवाहेतर सम्बन्धों के विचार को नकारता है। इसके विरोध में जॉन का मत कि विवाहेतर सम्बन्ध अनैतिक नहीं है, जॉन की अभिवृत्ति को बताता है। एक सरल विषयिनिष्ठवादी इन भिन्न दृष्टिकोणों को एक दूसरे से असहमत होता नहीं मानेगा। दोनों पक्षों के पास अपनी भावनाओं को रखने का अधिकार है अतः दोनों कथन सत्य हैं। सरल विषयिनिष्ठवाद मानता है कि मनुष्य अस्खलनीय हैं क्योंकि यह नैतिक असहमति के अस्तित्व को ही नकार देता है।

2) **वैयक्तिक विषयिनिष्ठवाद (Individualist Subjectivism)**– इस मत का प्रतिपादन सर्वप्रथम प्रोटेगोरस ने किया। प्रोटागोरस कहते हैं कि मनुष्य ही सभी वस्तुओं का मापदण्ड है। यह स्वार्थवाद का एक प्रारूप है जिसका मानना है कि मनुष्य को मात्र अपनी स्वार्थसिद्धि करना चाहिए। नैतिक कथन वक्ता की अभिवृत्तियों के विवरण मात्र हैं। जब मैं कहता हूँ कि गर्भपात गलत है तो मेरा आशय और कुछ नहीं है बस इतना है कि मैं गर्भपात का अननुमोदन करता हूँ। ठीक वैसे ही जैसे x उचित/शुभ/स्वीकार्य है=मैं x का अनुमोदन करता हूँ तथा x अनुचित/अशुभ/अस्वीकार्य है = मैं x का अननुमोदन करता हूँ। वैयक्तिक विषयिनिष्ठवाद बहुधा सम्वेगवादी सिद्धान्त से विभ्रमित कर दिया जाता है। सम्वेगवाद वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार नैतिक कथन वक्ता की अभिवृत्तियों को अभिव्यक्त करता है। सम्वेगवादियों के अनुसार नैतिक कथन कोई विवरण नहीं देते हैं अतः कथन को सत्यता मूल्य प्रदान नहीं किया जा सकता, परन्तु वैयक्तिक विषयिनिष्ठवाद के अनुसार व्यक्ति द्वारा अभिव्यक्त विश्वासों एवं अभिवृत्तियों द्वारा नैतिक कथन विवरण देते हैं।

3) **आदर्श दृष्टा सिद्धान्त (Ideal Observer Theory)**– आदर्श दृष्टा या प्रेक्षक सिद्धान्त मानता है कि नैतिक वाक्य कल्पित दृष्टा की अभिवृत्तियों के बारे में प्रतिज्ञप्तियों को अभिव्यक्त करते हैं। दूसरे शब्दों में, आदर्श दृष्टा सिद्धान्त का मानना है कि नैतिक निर्णयों को एक तटस्थ, बौद्धिक एवं (सम्भवतः) सभी सूचनाओं से विज्ञ अवलोकनकर्ता के वक्तव्य के रूप में व्याख्यायित करना चाहिए। इसका आशय है कि ख शुभ है क्योंकि आदर्श दृष्टा ख का अनुमोदन करता है। आदर्श दृष्टा सिद्धान्त का मुख्य विचार यह है कि नैतिक कथनों को निम्नलिखित उदाहरण के ढांचे में परिभाषित करना चाहिए –"क ख से बेहतर है" का आशय है कि यदि कोई सभी सूचनाओं से विज्ञ, जीवन्त कल्पनाशीलता से युक्त, तटस्थ एवं शांत–चित्त व्यक्ति हो तो वह क एवं ख में से क का चयन करेगा। आदर्श दृष्टा सिद्धान्त नैतिक निर्णयों की सत्यता को एक आदर्श दृष्टा के अनुमोदन अथवा अननुमोदन के सन्दर्भ में समझता है। रोड्रिक फर्थ ने सर्वप्रथम इस प्रश्न का उत्तर दिया कि क उचित है अथवा क शुभ है का आशय क्या है? एडम स्मिथ तथा डेविड ह्यूम आदर्श दृष्टा सिद्धान्त के पूर्वज थे। क उचित/शुभ/स्वीकार्य है = क एक आदर्श दृष्टा से अनुमोदित है। एक आदर्श दृष्टा वह है जो नैतिक निर्णय देने के लिए सर्वोत्कृष्ट स्थिति में है। या तो वह एक उत्तम मनुष्य है, कम पूर्वग्रहों वाला, सार्थक ब्योरों से विज्ञ और विवेकशील है या ईश्वर। नैतिक कथन एक विशिष्ट प्रकार के व्यक्तियों द्वारा निर्धारित होंगे। यह नैतिक तथ्यों को आकस्मिकता से बचाएगा। यह इस सिद्धान्त को सार्वभौमिकता प्रदान कर सकता है और नैतिक विषयिनिष्ठवाद के अन्य रूपों के विरुद्ध उठने वाली आपत्तियों से बचने में समर्थ हो सकता है।

4) **दैवीय समादेश सिद्धान्त (Divine Command Theory**)– यह यह एक अधिनैतिक सिद्धान्त है जिसका प्रतिपादन है कि एक कर्म का नैतिक रूप से शुभ होना इस बात के समतुल्य है कि वह ईश्वर द्वारा समादेशित है। इस सिद्धान्त का मानना है कि नैतिकता ईश्वरीय निर्देश के द्वारा निर्धारित होती है और एक व्यक्ति ईश्वरीय निर्देशों का पालन करके ही नैतिक हो सकता है। मोटे तौर पर यह एक ऐसा मत है जिसमें नैतिकता ईश्वर पर निर्भर करती है और ईश्वरीय समादेशों का पालन करना नैतिक दायित्व बन जाता है। यहाँ यह दावा भी शामिल है कि नैतिकता अंततोगत्वा ईश्वरीय आदेशों पर आधारित है और ईश्वर द्वारा निर्देशित/वांछित कर्म ही नैतिक कर्म हैं। इस सिद्धान्त की विशिष्ट विषयवस्तु धर्म–विशेष एवं दैवीय समादेश सिद्धान्त के मत–विशेष के अनुरूप परिवर्तित होती है। इस सिद्धान्त के अनेक समर्थक हैं यथा थॉमस एक्विनास, रोबर्ट एडम्स और फिलिप क्विन। हालाँकि इमान्युअल कांट, जॉन लॉक इत्यादि के दार्शनिक चिंतन ने इस सिद्धान्त को प्रभावित किया। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि नैतिक सत्य ईश्वर से स्वतन्त्र नहीं है और नैतिकता दैवीय निर्देशनों के द्वारा निर्धारित होती है। इस सिद्धान्त का कठोर प्रारूप बताते हैं कि दैवीय समादेश ही एकमात्र कारण हैं जो शुभ कर्मों को नैतिक बनाते हैं, जबकि उदारवादी प्रारूप दैवीय निर्देशनों को बुद्धि विवेक के साथ एक महत्वपूर्ण अंगभूत मानते हैं। दैवीय समादेश सिद्धान्तकारों की मान्यता ही कि कुछ वस्तुनिष्ठ मानक हैं जो सबके लिए एक समान हैं और व्यक्तिगत विश्वासों से मुक्त हैं। यह नैतिक मानक सबके लिए सत्य हैं भले ही वह उनमें विश्वास रखते हों या नहीं। भले ही वह उन्हें जानते हों या नहीं। यह चरम नैतिक मानक ईश्वर के समादेश से अस्तित्ववान हैं। ईश्वर मात्र शुभ कर्मों हेतु समादेश करता है, वह कभी भी व्यक्ति

को अशुभ कर्मों हेतु निर्देश नहीं देगा। ईश्वर सर्वशक्तिमान,सर्वज्ञ एवं सबसे प्रेम करने वाला है। ईश्वर ने एक मनुष्य के रूप में हमारे लिए जो शुभ है उसे करने का आदेश दिया है और उसके आदेश स्वतः ही नैतिक रूप से उचित हैं।

बोध प्रश्न II

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) वैयक्तिक विषयिनिष्ठवाद क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) नैतिक विषयिनिष्ठवाद के प्रति सम्भावित आपत्तियाँ क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

12.4 डेविड ह्यूम का विषयिनिष्ठवाद मत

डेविड ह्यूम (1711–1776) एक स्कॉटिश इतिहासकार, अर्थशास्त्री एवं दार्शनिक थे। ह्यूम द्वारा नैतिकता की आधारशिला सम्बन्धी विवादों की परीक्षा उनकी दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकों *ट्रीटाइज ऑफ ह्यूमन नेचर* एवं *एन इन्क्वायरी कंसर्निंग द प्रिंसिपल्स ऑफ मॉरल्स* में निहित है। उन्होंने मानवीय मामलों में प्रकृतिवादी उपागम अपनाया। ह्यूम ने इस विचार को नकार दिया कि नैतिकता एवं राजनीति मानवीय आनन्द विषयक विवेकशील समझौते या करार पर आधारित हो सकती है। ह्यूम का नैतिक सिद्धान्त उनके अनुभववादी मनस के सिद्धान्त पर आधारित है। अपने अनुभववादी सिद्धान्त में वह 4 सिद्धान्तों का विधान करते हैं– (1) विवेक अकेले संकल्प का अभिप्रेरक नहीं हो सकता वरन वह भावावेशों का गुलाम है। (2) नैतिक सुभिन्नताएं या अन्तर विवेक से व्युत्पन्न नहीं होते हैं। (3) नैतिक सुभिन्नताएं नैतिक मनोभावों से व्युत्पन्न होती हैं; उस अवलोकनकर्ता की अनुमोदन या अननुमोदन की भावनाओं से, जो किसी कर्म या चरित्रगतलक्षण का चिन्तन–मनन करता है। (4) कुछ गुण या अवगुण प्राकृतिक होते हैं और कुछ कृत्रिम होते हैं, यथा– न्याय। उनका मानना था कि मानवीय बुद्धि–विवेक मूल्यों से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता है। शुभ, उचित, अशुभ जैसे प्रश्नों का कोई विवेक पूर्ण उत्तर नहीं है। उदाहरण के लिए उनका मानना था कि 'लोगों को किस प्रकार जीवनयापन करना चाहिए' विषयक प्रोटेस्टेंट एवं कैथोलिक मतभेद का निर्धारण मानवीय आनन्द के एक वस्तुनिष्ठ विवरण के सन्दर्भ में नहीं हो सकता और इसे बुद्धि के प्रयोग द्वारा नहीं जाना जा सकते। नैतिकता एवं न्याय हेतु एक

सर्वशक्तिमान शासक की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमारी भावनाएं यदाकदा ही हमें दूसरों के सरोकारों की तरफ ले जाती हैं। अनेक दार्शनिकों का मानना है की विवेक हमारी क्रियाओं एवं प्रवृत्तियों को प्रशिक्षित कर सकता है परन्तु ह्यूम के अनुसार विवेक मात्र वस्तुओं के बीच के अंतर्सम्बन्धों को प्रकाशित करता है। वह यह नहीं बताता कि हमें क्या करना चाहिए। बुद्धि–विवेक ज्ञान का स्रोत हो सकता है परन्तु यह अभिप्रेरणाओं का स्रोत नहीं हो सकता है। सरल शब्दों में बुद्धि–विवेक हमें बताता है कि संसार कैसा है परन्तु वह यह नहीं बताता कि संसार कैसा होना चाहिए। ह्यूम हाब्स से इस बात पर सहमत हैं कि अभिप्रेरणाएँ सद्गुणों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करतीं हैं लेकिन वह अभिप्रेरणाएँ स्वार्थ युक्त नहीं हैं। मनुष्य मुख्यतः स्वार्थी हो सकता है परन्तु उसके व्यवहार की सटीक समीक्षा उन स्थितियों को प्रकाशित करती है जहाँ यदि निजी हित को सार्वजनिक हित से अलग कर दिया जाए तो मनुष्य सार्वजनिक हित के कार्य सम्पादित करता है। उनका अवलोकन है कि हमारे नैतिक निर्णय किसी विशिष्ट कर्म या वस्तु सम्बन्धी उसकी उपयोगिता पर आधारित हैं। परन्तु इस उपयोगिता को हाब्स जैसे स्वार्थवाद से विभ्रमित नहीं करना चाहिए। उनका विश्वास था कि हम सामाजिक उपयोगिता की परवाह करते हैं तब भी जब वह हमारे निजी हित में ना हो। ह्यूम के नैतिक दर्शन का महत्वपूर्ण आयाम हैं भावनाएं, जिसे वह सहानुभूति कहते हैं, जिसका आशय है अपने साथी को कष्ट में देख कर हमारे अंदर उद्भूत होने वाला सम्वेग। उनका कहना है कि जब कभी ऐसा होता है हम सहायता करने की आकांक्षा से तत्पर हो जाते हैं क्योंकि दूसरों के कष्ट एवं क्लेश को देख कर हम भी दुःखी होते हैं। वह पुनः इस बात को कहते हैं कि नैतिक कर्मों का उद्गम बुद्धि से नहीं होता है वरन सम्वेगों से होता है। सम्वेग हमारे अंदर निहित वह गुणधर्म हैं जो सुख की आकांक्षा रखती हैं और दुःखों से परहेज। बुद्धि– विवेक मात्र परिस्थितियों का विश्लेषण कर सकता है और हमारी क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले सुख या दुःख के संतुलन का आंकलन कर सकता है परन्तु बुद्धि स्वयं कर्मों को प्रवृत नहीं कर सकती है। इसलिए उनका कहना है कि बुद्धि भावावेशों की गुलाम होती है। ह्यूम ने बुद्धिवादियों एवं स्वेच्छावादियों की प्रस्थापनाओं को नकार दिया जो नैतिकता को एक अति प्राकृतिक आधार प्रदान करते थे। नैतिक बुद्धिवादियों का मानना है कि नैतिक सुभिन्नताएं अलौकिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं जो सभी बौद्धिक प्राणियों का नियमन करती हैं। बुद्धिवादी एवं वस्तुवादी हमें बताते हैं कि एक कूटस्थ सत्य है – माता पिता की आज्ञा का पालन होना चाहिए, सहोदरों में यौन सम्बन्ध नहीं बनाना चाहिए, और अगम्यागमन (इन्सेस्ट) अनैतिक है। हालाँकि जगत में लगातार इन सिद्धान्तों का उल्लंघन होता रहता है। नैतिकता एक व्यावहारिक व्यापार है जिसमे कर्म एवं संकल्प शामिल होते हैं। नैतिकता की सार भूत अभिप्रेरक शक्ति उपलब्ध कराने में ना तो अमूर्त बौद्धिक चिन्तन समर्थ है और ना ही दैवीय सत्ता। ह्यूम ने अपने अपने नैतिक दर्शन में इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया कि नैतिकता कहाँ निहित है? नैतिकता की बुनियाद कहाँ स्थित है? उनका मानना है कि यह मानवीय प्रकृति में निहित है।

ह्यूम की नीतिशास्त्रीय चुनौती बुद्धि विवेक एवं कर्म के सम्बन्धों के अन्वेषण से आरंभ होती है। ह्यूम का बुद्धि से आशय सत्य, विश्वास, असत्य को निर्धारित करने की क्षमता से है। यह 2+2=4 जैसे सत्य तथा 2+2=5 जैसे असत्य का अन्वेषण करती है। यह कारण एवं कार्य के सम्बन्ध के निर्धारण में भी सहायता करती है। परन्तु यह किसी कर्म को अभिप्रेरित नहीं कर सकती है। 'हमें एक विशेष कर्म क्यों करना चाहिए' ऐसे प्रश्नों के सन्दर्भ में बुद्धि हमें यह नहीं बता सकती कि हमें कौन से कर्म करने चाहिए

और कौन से कर्म नहीं करने चाहिए। यह इस बात को निर्धारित कर सकती है कि सोडा पीने की क्रिया से वजन बढ़ जाता है परन्तु यह प्रयोजन के विषय में कुछ भी नहीं बताती। बुद्धि हमें यह बता सकती है कि लक्ष्य को कैसे अर्जित किया जा सकता है परन्तु इसे मानवीय भावनाओं एवं संवेदनाओं पर आधारित होना चाहिए। बुद्धि अकेले क्रिया को उद्दीप्त नहीं कर सकती है। ह्यूम का तर्क है कि नैतिकता भावनाओं से उद्दभूत होती है परन्तु यह बुद्धि द्वारा विज्ञ है या इसे बुद्धि द्वारा विज्ञ होना चाहिए। इसका आशय यह है कि बुद्धि हमें सूचना देने में समर्थ हो सकती है परन्तु अंततोगत्वा कर्म, भावनाओं या सम्वेगों द्वारा चालित होते हैं। बुद्धि एक उपकरण है जो किसी के कर्मों के तथ्यों का निर्धारण कर के उन संवेगों की सहायता करता है। उदाहरण के तौर पर, बुद्धि यह निर्धारित कर सकता है कि अनवरत मिथ्यावादन (झूठ बोलना) एक अप्रसन्न जगत को निर्मित करता है परन्तु यह हमें यह नहीं बता सकता है कि हमें झूठ नहीं बोलना चाहिए। यह मात्र भावनाएं हैं जो हमें सत्य बोलने के लिए अभिप्रेरित करती हैं।

ह्यूम की मान्यता है कि नैतिकता अपने भीतर पाई जा सकती है। जब आप एक अनैतिक कर्म को देखते हैं और जब आप मात्र उस कर्म में शामिल वस्तुओं से सरोकार रखते हैं तो आप उस परिस्थिति के विषय में उचित या अनुचित नहीं खोज सकते हैं। उस परिस्थिति के विषय में उचित या अनुचित आपको तभी मिलेगा "जब आप चिंतन को परिवर्तित कर अननुमोदन की भावना को पाएंगे"। ह्यूम का कहना है कि यह सिर्फ एक भावना या मनोसंवेग है। अतः नैतिकता हमारे बुद्धि पर आधारित नहीं है, क्योंकि अपनी बुद्धि के द्वारा उस परिस्थिति के परीक्षण से हमें शुभ/उचित या अशुभ/अनुचित प्राप्त नहीं होता है। हमारी बुद्धि हमें मात्र तथ्यों के विषय में बताती है कि क्या घटित हुआ और कैसे घटित हुआ। तब नैतिकता अनुभूति या भावना होनी चाहिए। ह्यूम रंग, ऊष्मा तथा ऐसे "गुणों" के दार्शनिक मत का उदाहरण देते हैं। ह्यूम का कहना है कि आधुनिक दर्शन रंग, ऊष्मा तथा ध्वनि जैसी चीजों को सिर्फ प्रत्यक्ष मानता है ना कि किसी वस्तु का सुनिश्चित गुण। निश्चित तौर पर रंग और ऊष्मा हमारे प्रेक्षण की वस्तुएं हैं परन्तु निश्चित तौर पर यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसी चीजें किसी वस्तु के गुणधर्म हैं। उदाहरण के तौर पर एक सेब को लेते हैं। हम लाल रंग को देखते हैं परन्तु लालिमा हमारा प्रत्यक्ष है और अनिवार्यतः सेब का वास्तविक गुण नहीं है। अगर इस बात को आगे बढ़ाएं तो हम तथ्यतः यह भी नहीं कह सकते कि सेब अस्तित्ववान है, और अगर सेब अस्तित्ववान नहीं है तो निश्चित तौर पर लालिमा उसका गुण नहीं हो सकती है। हम मात्र इतना जानते हैं कि हम सेब का प्रत्यक्ष करते हैं और हमारे प्रत्यक्ष में वह लाल है। यह सेब के अस्तित्व अथवा गुणों को आपादितत नहीं करता है। ह्यूम इस तरह के विचारों कि तुलना नैतिकता से करते हैं। ह्यूम यह दर्शाने की कोशिश कर रहे हैं कि रंग तथा ऊष्मा के प्रेक्षणों की भांति नैतिकता भी किसी वस्तु में प्राप्त नहीं हो सकती है वरन नैतिकता एक ऐसी चीज है जो हमारे जगत में अस्तित्ववान होती है और हमारी भावनाओं से उदभूत होती है।

ह्यूम की यह उद्घोषणा उचित प्रतीत होती है कि इन्द्रियों से नैतिकता की परख नहीं हो सकती है। हम केवल वही जान सकते हैं जो इन्द्रियों द्वारा प्रदत्त है और हमारी इन्द्रियां यह नहीं बताती हैं कि कब कोई चीज उचित या अनुचित है। कोई चीज तभी उचित या अनुचित होती है जब कोई व्यक्ति देखे या सुने कर्मों के प्रति अपनी भावनाओं को प्रयोग करता है। इसका साक्ष्य है लोगों के नैतिक विश्वासों का अन्तर।

जो कर्म एक व्यक्ति की नैतिक संवेदनाओं को आहत करता है वह अनिवार्यतः दूसरे व्यक्ति की नैतिक संवेदनाओं को भी आहत नहीं करता है। जहाँ एक ओर अनेक लोगों का यह विश्वास है कि किसी भी स्थिति में आत्महत्या करना नैतिकता का उल्लंघन है परन्तु वहीं दूसरी तरफ अनेक संस्कृतियों में युद्ध में पराजय स्वीकार करने की अपेक्षा आत्मघात करना अधिक सम्माननीय माना जाता है। यह लोग वैसी परिस्थिति में आत्मघात को अनैतिक नहीं मानते हैं। नैतिकता ऐसी चीज नहीं है जो किसी वस्तु या कर्म में अन्तर्निहित हो क्योंकि आत्महत्या के कर्म के विषय में दो भिन्न लोग दो भिन्न निष्कर्ष निकालते हैं। ह्यूम कहते हैं कि नैतिकता हमारे अंदर व्यक्तिगत मनोसंवेगों के रूप में निहित होनी चाहिए। ह्यूम के अनुसार, मूल्य तथ्य से निगमित नहीं की जा सकती है।

12.5 सारांश

नैतिक विषयिनिष्ठवाद एक अधिनैतिक सिद्धान्त है जिसका मानना है कि नैतिक निर्णयों के सत्यता मूल्य वक्ता की भावनाओं एवं मतों पर निर्भर करते हैं। हालाँकि इसे सम्वेगवादी सिद्धान्त से विभ्रमित नहीं करना चाहिए। नैतिक विषयिनिष्ठवादियों के लिए व्यक्ति के मनस से स्वतंत्र अर्थात् अभिवृत्तियों, संवेगों तथा भावनाओं से स्वतंत्र कोई नैतिक तथ्य नहीं होते हैं। नैतिक विषयिनिष्ठवाद के चार प्रकार हैं; सरलविषयिनिष्ठवाद, वैयक्तिक विषयिनिष्ठवाद, आदर्श दृष्टा या प्रेक्षक सिद्धान्त तथा दैवीय समादेश या आदेश सिद्धान्त। डेविड ह्यूम का नैतिक सिद्धान्त नैतिकविषयिनिष्ठवाद का एक उदाहरण है क्योंकि वह मानवीय संवेगों को नैतिकता की बुनियाद मानते हैं। वस्तुनिष्ठवादियों के विपरीत, वह बुद्धि विवेक के ऊपर संवेगों को वरीयता देते हैं। उनके अनुसार बुद्धि–विवेक संवेगों को प्रशासित करने का एक उपकरण मात्र है किन्तु संवेग कर्म के वास्तविक अभिप्रेरक हैं।

बोध प्रश्न III

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) डेविड ह्यूम के अनुसार चार महत्वपूर्ण आधारभूत सिद्धान्त क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) "विवेक भावावेशों का गुलाम है "– इस कथन का आशय क्या है ?

.....

.....

.....

.....

.....

12.6 कुंजी शब्द

नैतिक प्रति–यथार्थवाद (Moral anti-realism): नैतिक प्रति–यथार्थवाद मत है जो मानता है कि मानवीय अभिवृत्तियों, भावनाओं, विश्वासों इत्यादि से स्वतन्त्र कोई वस्तुनिष्ठ मूल्य नहीं होते हैं।

भावावेश (Passion) : यह बुद्धि–विवेक का विलोम एवं सम्वेग और भावनाओं या अनुभूतियों का समानार्थी है।

12.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

ग्रायेफ, फेलिक्स. *ए शार्ट ट्रीटाइज ऑन एथिक्स.* लंदनः डकवर्थ, 1980.

रोजेन, मार्क वान. *मेटा एथिक्सः ए कन्टेम्परेरी इंट्रोडक्शन.* लंदनः राउटलेज, 2015.

डेविड फेट नार्टन (एड.). *द कैम्ब्रिज कम्पेनियन टू ह्यूम.* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993.

वालेंचाओ, विल्फ्रेड जे. *द डाइमेंशन ऑफ एथिक्स.* ब्रॉडव्यू प्रेस, 2003.

ह्यूम, डेविड. *ट्रीटाइज ऑन ह्यूमन नेचर.* लंदनः लॉगमैन, ग्रीन एण्ड क., 1739.

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) नैतिक प्रति–यथार्थवाद या नैतिक अयथार्थवाद मानता है कि अभिवृत्तियों, भावनाओं, विश्वासों इत्यादि से स्वतन्त्र कोई वस्तुनिष्ठ मूल्य नहीं होते हैं। नैतिक विषयिनिष्ठवाद नैतिक प्रति–यथार्थवाद का एक प्रकार है।

   नैतिक प्रति–यथार्थवाद के 4 प्रकार हैं – नैतिक विषयिनिष्ठवाद, असंज्ञानवाद, नैतिक उच्छेदवाद या नैतिक शून्यवाद तथा नैतिक संशयवाद।

बोध प्रश्न I I

1) वैयक्तिक विषयिनिष्ठवाद – यह स्वार्थवाद का एक प्रारूप है जिसका मानना है कि मनुष्य को मात्र अपनी स्वार्थसिद्धि करना चाहिए। नैतिक कथन वक्ता की अभिवृत्तियों के विवरण मात्र हैं। जब मैं कहता हूँ कि गर्भपात गलत है तो मेरा आशय और कुछ नहीं है बस इतना है कि मैं गर्भपात का अननुमोदन करता हूँ। ठीक वैसे ही जैसे अ उचित/शुभ/स्वीकार्य है= मैं अ का अनुमोदन करता हूँ तथा अ अनुचित/अशुभ/अस्वीकार्य है=मैं अ का अननुमोदन करता हूँ।

2) नैतिक विषयिनिष्ठवाद के विरूद्ध दो सशक्त आपत्तियाँ हैं । वे हैं–

   क) यदि नैतिक विषयिनिष्ठवाद सत्य है तब प्रत्येक व्यक्ति अपने नैतिक विश्वासों के बारे में अभ्रांत होगा। किन्तु मनुष्य अपने नैतिक विश्वासों के बारे में अस्ख्लनीय/अभ्रांत नहीं है। हम अपने विचार बदलते रहते हैं। किसी एक समय मैं कह सकता हूँ कि "भ्रूणहत्या नैतिक रूप से स्वीकार्य है" और किसी दूसरे समय मैं अपना विचार परिवर्तित कर सकता हूँ और कह सकता हूँ कि "भ्रूणहत्या नैतिक रूप से अस्वीकार्य है"।

ख) यदि नैतिक विषयिनिष्ठवाद सत्य है तब प्रत्येक व्यक्ति अपने नैतिक विश्वासों के बारे में सही होगा। किन्तु हम कभी–कभी गलत हो सकते हैं। यहाँ नैतिक असहमति हो ही नहीं सकती। सरल शब्दों में नैतिक विषयिनिष्ठवाद नैतिक असहमति का समर्थन कर ही नहीं सकता है। उदाहरण के लिए यदि कहता है कि शिशुहत्या कभी कभी उचित है तो इसका आशय है कि कुछ परिस्थितियों में शिशुहत्या का अनुमोदन करता है । यदि ब कहती है कि शिशुहत्या अनुचित है तो इसका आशय है कि वह प्रत्येक परिस्थिति में शिशुहत्या का अननुमोदन करती है अर्थात् अनुमोदन नहीं करती है। परन्तु अ का अनुमोदन तथा ब का अननुमोदन दोनों सत्य हैं।

बोध प्रश्न III

1) ह्यूम का नैतिक सिद्धान्त उनके अनुभववादी मनस के सिद्धान्त पर आधारित है। अपने अनुभववादी सिद्धान्त में वह 4 सिद्धान्तों का विधान करते हैं, (1) विवेक अकेले संकल्प का अभिप्रेरक नहीं हो सकता वरन वह भावावेशों का गुलाम है। (2) नैतिक मतभेद विवेक से व्युत्पन्न नहीं होते हैं। (3) नैतिक मतभेद नैतिक मनोभावों से व्युत्पन्न होते हैंय उस अवलोकन कर्ता की अनुमोदन या अननुमोदन की भावनाओं से जो किसी कर्म या चरित्रगतलक्षण का चिन्तन–मनन करता है। (4) कुछ गुण या अवगुण प्राकृतिक होते हैं और कुछ कृत्रिम यथा न्याय। उनका मानना था कि मानवीय बुद्धि या विवेक मूल्यों सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता है।

2) "बुद्धि या विवेक भावावेशों का गुलाम होता है", डेविड ह्यूम ने यह वक्तव्य अपनी पुस्तक ट्रीटाइज ऑफ ह्यूमन नेचर में दिया है। उनका आशय है कि भावावेश हमें विभिन्न चीजों के लिए अभिप्रेरक शक्ति प्रदान करते हैं। और बुद्धि–विवेक हमें विभिन्न चीजों के विषय में सूचना प्रदान करते हैं। बुद्धि–विवेक एवं भावावेशों में कोई विवाद नहीं है। भावावेश नियंत्रक हैं क्योंकि वह बुद्धि विवेक द्वारा प्रदान किये गए विचारों को कार्यान्वयित करते हैं और लक्ष्यों को पूर्ण करते हैं। हालाँकि भावावेशों के बिना बुद्धि विवेक शक्तिहीन हैं। बुद्धि–विवेक स्वयं किसी कर्म को उत्पन्न नहीं करता और ना ही सम्वेगों को उत्पन्न करता है। भावावेश ही मौलिक अस्तित्व हैं और अस्तित्व के विकार हैं। उदाहरण के लिए जब कोई भूखा होता है तो वह भावावेश से ग्रसित होता है और उस भावना में उसके पास इससे इतर किसी अन्य चीज का सन्दर्भ नहीं होता है।

इकाई 13 सम्वेगवाद : चार्ल्स स्टीवेन्सन*

रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 परिचय

13.2 परिभाषा

13.3 नीति–दर्शन में सम्वेगवाद का महत्त्व

13.4 दार्शनिक मत

13.5 सारांश

13.6 कुंजी शब्द

13.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है,

- नैतिक दर्शन में सम्वेगवाद की परिचयात्मक समझ और महत्व को दर्शाना,
- पाश्चात्य दर्शन के इतिहास में दार्शनिकों ने सम्वेगवाद के विविध आयामों को ढूंढा, यद्यपि यह इकाई चार्ल्स स्टीवेन्सन द्वारा प्रस्तुत सम्वेगवाद के संस्करण पर केन्द्रित है।

13.1 परिचय

सम्वेगवाद नैतिक दर्शन का एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है। इसे अमरीकी दार्शनिक चार्ल्स स्टीवेन्सन (1908–1978) द्वारा विकसित किया गया था। उनका जन्म 1908 में ओहायो के सिनसिनाटी नामक शहर में हुआ था और वही वे पले–बढे भी। उन्होने जी. ई. मूर, ब्रोड एवं विटगेन्स्टाइन से दर्शन की शिक्षा प्राप्त की परंतु सबसे अधिक प्रभावित वे विटगेन्स्टाइन से हुए। 1933 से आरम्भ कर और युद्ध के उपरांत उन्होंने हावर्ड विश्वविद्यालय में सम्वेगवाद को विकसित किया। स्टीवेन्सन का लेखन मुख्यतः अधिनीतिशास्त्र के क्षेत्र में ही था। युद्ध के बाद का नीतिशास्त्रीय वाद–विवाद दर्शन में 'लिंग्विस्टिक टर्न' (भाषायी बदलाव) कहलाता है, इसी समय, मुख्यतः तार्किक भाववादी (लॉजिकल पॉजिटिविज्म) दर्शन के प्रभाव के कारण, दर्शन पर वैज्ञानिक ज्ञान का अवधारण (जोर) बढ़ रहा था। प्रश्न, जैसे कि क्या नैतिक विचारों/निर्णयों में वैज्ञानिक तथ्यों की कोई भूमिका होती है या नहीं? हमारे मनोविकार एवं भावनाएं किस सीमा तक हमारी नैतिकता की समझ को प्रभावित करते हैं?, महत्वपूर्ण हो उठे थे। अतः इन एवं सम्बद्ध मुद्दों का उत्तर देने के लिए दार्शनिकों ने अलग–अलग नैतिक सिद्धान्त विकसित किए। चार्ल्स स्टीवेन्सन उन दार्शनिकों में से एक हैं जिन्होंने उस समय में अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया और यह स्थापित करने का प्रयास किया कि

* श्री बंशीधर दीप, व्याख्याता (तर्कशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र), जवाहर महाविद्यालय, पटनागढ़, ओड़ीसा, अनुवादक– डॉ. शिल्पी श्रीवास्तव, सहायक प्राध्यापिका, दर्शन विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली

भावनाएं एवं अन्य निर्बौद्धिक गुण हमारे नैतिक–बोध (नैतिक–समझ) और नैतिक निर्णयों को बनाते हैं (संरचित करते हैं)। तार्किक भाववाद के एक प्रमुख दार्शनिक ए. जे. एयर अपनी पुस्तक *लैंग्वेज, ट्रुथ एण्ड लॉजिक* में तर्क करते हैं कि नैतिक निर्णय सत्यापित नहीं किये जा सकते हैं, अर्थात् नैतिक निर्णय न तो विश्लेषणात्मक (तार्किक सत्य) होते हैं और न ही तथ्यात्मक कथन। अपितु वो किसी व्यक्ति विशेष द्वारा किसी कर्म के बारे में सहमति या असहमति की केवल आवेगपूर्ण एवं भावनात्मक अभिव्यक्ति है। इसी मत को चार्ल्स स्टीवेन्सन ने अपनी पुस्तक *एथिक्स एण्ड लैंग्वेज* (1944) में और विकसित किया और सम्वेगवाद का आधार तैयार किया। उन्होंने सम्वेगवाद की चर्चा अपने आलेखों 'इमोटिव मीनिंग ऑफ एथिकल टर्म्स (1937) एवं 'परसुएसिव डेफिनेशन' (1938) में भी की है।

13.1 परिभाषा

सम्वेगवाद पद हमारे नैतिक निर्णयों, वाक्यों, शब्दों एवं वाक्–कर्म को सन्दर्भित करता हैय यह इन क्षेत्रों, मुख्यतः, कि क्या इन क्षेत्रों (नीति–दर्शन आदि) में हमारे निर्णय तथ्यात्मक हैं या नहीं?, के बारे में हमारे निर्णयों के मूल्यांकन की प्रकृति के सम्बन्ध में प्रश्न करता है।

सम्वेगवाद एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है जो 'शुभ' जैसे नैतिक शब्दों को परिभाषित करने का प्रयास करता है। 'द इमोटिव मीनिंग ऑफ एथिकल टर्म' में स्टीवेन्सन का लक्ष्य "शुभ" की एक प्रासांगिक परिभाषा देना था। वह दावा करते हैं कि समुचित परिभाषा होने का अर्थ है इसे व्यापक/सर्व–समावेशी होना चाहिए तकि कोई पद वह सबकुछ उल्लिखित कर पाये जो इसके बारे में कहना आवश्यक हो; यह असंदिग्ध होना चाहिए; इसे एक की बजाय अनेक परिभाषित अर्थों को सम्मिलित करना चाहिए, और इस तात्पर्य में सभी अर्थों को 'शुभ' पद की समझ/बोध के लिए प्रासंगिक माना जायेगा (स्टीवेन्सनः 1937)। स्टीवेन्सन पारम्परिक 'नीतिशास्त्रीय हित–सम्बन्धी सिद्धान्तों' को नकारते हैं, जोकि उनके अनुसार नैतिक समस्या को या तो, क्या यह मेरे द्वारा इच्छित है (हॉब्स) या फिर, क्या यह सभी लोगों द्वारा अनुमोदित है (ह्यूम)? के पदों में वर्णित करती है। इन सिद्धान्तों को नकारने के लिए, स्टीवेन्सन इंगित करते हैं कि संशोधित सिद्धान्त को तीन सामान्यबोध (लोकानुभव) मानदण्डों का पालन करना चाहिए। इन तीन मानदण्डों का 'हित–सम्बन्धी सिद्धान्त' पालन नहीं करते हैं। प्रथम, कोई चीज शुभ है, इस सम्बन्ध में लोग संज्ञानात्मक रूप से असहमति जताने के लिए योग्य होने चाहिए, और यह मानदण्ड हित–सम्बन्धी सिद्धान्त के प्रथम रूप; मेरे द्वारा इच्छित, की सम्भावना को समाप्त कर देता है। द्वितीय, "शुभ" केवल इसी हेतु (इसकी खातिर) लोगों को कार्य करने हेतु प्रेरित करना चाहिए। एक व्यक्ति को जो किसी को "शुभ" मानता है, उसे इसके पक्ष में कार्य करने के लिए प्रेरित होना चाहिए, जोकि वह अन्यथा करता, और इसीलिए यह हित–सम्बन्धी सिद्धान्त के द्वितीय रूप; सभी के द्वारा अनुमोदित, की सम्भावना को समाप्त करता है। एक व्यक्ति किसी कार्य हेतु सभी का अनुमोदन है, ऐसा जानते हुए भी उस पर कार्य नहीं करने की चाह रख सकता है। तृतीय, "शुभ" का सत्यापन केवल वैज्ञानिक पद्धति से नहीं होना चाहिए; नैतिक प्रश्नों को मनोविज्ञान अथवा लोगों की इच्छा के आनुभविक परीक्षण (जैसे, आंकड़ों को जुटाकर कि कौन क्या चाहता है; मात्रात्मक पद्धति) में अपचयित (अधीन; किसी को किसी के अन्तर्गत लाना या बदल देना, ढाल देना) नहीं किया जा

सकता है। 'शुभ क्या है' यह प्रश्न वैज्ञानिक ज्ञेय अथवा परीक्ष्य सिद्धान्तों के समुच्चय में अपचयित नहीं किया जा सकता है (स्टीवेन्सनः 1937)।

पारंपरिक असंज्ञानवादी सिद्धान्त ये मानते हैं कि नैतिक निर्णय और वाक्–कर्म का प्राथमिक कार्य मनोभावों अथवा अभिवृत्तियों को व्यक्त करना है, न कि तथ्यों का वर्णन करना, उनके बारे में सूचित करना या उनका प्रतिनिधित्व करना। सम्वेगवादी, जोकि असंज्ञानवाद की परम्परा से सम्बन्धित हैं, यह भी कहते हैं कि नैतिक निर्णय तथ्यों के कथन नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, सम्वेगवादी इस बात को नकारते हैं कि नैतिक तथ्य, या नैतिक शब्द जैसे शुभ, अशुभ, अनुचित, उचित कोई तथ्यात्मक नैतिक विधेय रखते हैं। उनके अनुसार, नैतिक दावों का मूल्यांकन सत्य और असत्य के आधार पर नहीं हो सकता है। सम्वेगवादियों के अनुसार, नैतिक निर्णयों द्वारा अभिव्यक्त किसी व्यक्ति की अभिवृत्ति प्रकृति में संज्ञानात्मक नहीं है, बल्कि यह प्रेरणात्मक तत्त्व रखती है, यह मुख्य मानदण्ड है। अतः, सम्वेगवाद दावा करता है कि नैतिक निर्णय सम्वेगों को अभिव्यक्त करते हैं और इन सम्वेगों का अनुमोदन और अननुमोदन किया जा सकता है, लेकिन उनका वर्णन या विश्लेषण उस तरह नहीं किया जा सकता है जिस तरह से तथ्यात्मक कथनों के मूल्यांकन किया जाता है। किन्तु, हम यह समझना होगा कि सम्वेगवाद शास्त्रीय व्यक्तिनिष्ठवाद या आत्मनिष्ठवाद नहीं है। शास्त्रीय आत्मनिष्ठवाद के अनुसार, नैतिक निर्णय बनाने के समय, हम अपने सम्वेगों को अभिव्यक्त करने के साथ उनका कथन करते हैं; हमारे नैतिक अभिकथन सर्वदा सत्य नहीं होंगे (यदि हम असत्य नहीं बोल रहे हैं तो, और यह एक अलग मामला है)! यह मत नैतिक असहमतियों के लिए स्थान प्रदान नहीं करता है, जिनके साथ हमारा सामना हमेशा होता है, और अतः नैतिक मुद्दों की समझ के लिए अपर्याप्त है। दूसरी ओर सम्वेगवाद विचार करता है कि नैतिक निर्णय के बनाने के समय, हम केवल हमारे सम्वेग या मनोभाव को अभिव्यक्त करते हैं, न कि हमारे सम्वेगों का कथन करते हैं। यह भाषा के उपयोग की भिन्न समझ (कथन बनाना, आदेश देना, विस्मय प्रकट करना, इत्यादि) को तार्किकरूप से अन्तर्निहित करती है, और हमारे सम्वेगों के तथ्यात्मक अभिकथन से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

13.3 नीति–दर्शन में सम्वेगवाद का महत्त्व

सम्वेगवाद को बीसवी शताब्दी का एक महत्तवपूर्ण नैतिक सिद्धान्त के रूप में देखा जाता है, जिसका विकास उपयोगितावाद एवं काण्ट के नीति–दर्शन के विकल्प के रूप में हुआ। स्टीवेन्सन के सम्वेगवाद में असंज्ञानात्मक मनोभावों को अधिक महत्व दिया गया है। यहाँ असंज्ञानवाद का विकास प्रत्यक्षवाद के विरोधी सिद्धान्त के रूप मे हुआ। सम्वादों में विज्ञान और विशेषरूप से तार्किक भाववाद (तार्किक प्रत्यक्षवाद) का आधिपत्य के कारण नैतिक निर्णयों को समझने में कठिनाई उत्पन्न हो गई। विज्ञान के आधिपत्य के अकरण, प्रत्येक क्षेत्र को वैज्ञानिक ढांचे में देखा जाना स्वाभाविक–सा हो गया। इस प्रकार, नैतिक निर्णयों, नैतिक कथनों, नैतिक शब्दों को वैज्ञानिक ढांचे के अन्तर्गत समझा जाने लगा, लेकिन स्टीवेन्सन और अन्य अनेक दार्शनिक इस बात से सहमत नहीं थे कि नैतिक निर्णय, नैतिक कथनों या नैतिक शब्दों को वैज्ञानिक ढंग से या तथ्यात्मक कथनों के द्वारा समझा जाये। अतः स्टीवेन्सन ने इस समस्या को गम्भीरता से लिया और सम्वेगवाद का अधि–नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त विकसित किया, जहाँ उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि नैतिक कथन, नैतिक निर्णय या नैतिक शब्द आनुभविक (व्यावहारिक) या वैज्ञानिक तथ्य नहीं हैं, बल्कि उनको

सम्वेगात्मक अर्थ के माध्यम से समझा जा सकता है। तथ्य और मूल्य और उनके भेद के मुद्दे ने अनेक वाद–विवादों को जन्म दिया। स्टीवेन्सन ने वैज्ञानिक निर्णय और नैतिक निर्णय के मध्य अनुरूपता दिखाई। जब किसी विशिष्ट वैज्ञानिक निर्णय के बारे में असहमति होती है, तो इसका समाधान विश्वासों की सहमति के माध्यम से किया जा सकता है। नैतिक निर्णय के मामले में, इस बात की सम्भावना है कि विश्वास और अभिवृत्ति में सहमति के माध्यम से इसका समाधान किया जा सके। किन्तु, कोई भी इस बात में निश्चित नहीं हो सकता है कि लोगों के मध्य विश्वासों और अभिवृत्तियों में सहमति होने पर, नैतिक असहमति का समाधान हो जायेगा। इस प्रकार, सम्वेगवाद नैतिक सिद्धान्त और दर्शन के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। (सातरिसः1987)

बोध प्रश्न I

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नैतिक दर्शन में सम्वेगवाद के सिद्धान्त का क्या महत्व है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त के रूप में सम्वेगवाद का उद्‌गम कैसे हुआ?

.....

.....

.....

.....

.....

13.4 दार्शनिक मत

नैतिक सम्वेगवाद पर चर्चा चार्ल्स स्टीवेन्सन से बहुत पहले आरम्भ हो चुकी थी, इसलिए इसका इतिहास और पृष्ठभूमि को समझना महत्वपूर्ण है। प्रारम्भ में, इस पर चर्चा हमें जी. ई. मूर एवं डब्लू. डी. रॉस जैसे दार्शनिकों की पुस्तकों क्रमशः *प्रिंसपिया एथिका* और *फाउन्डेशन्स ऑफ एथिक्स* में मिलती है। मूर एक नैतिक संज्ञानवादी दार्शनिक थे। उनका मानना था कि नैतिक निर्णय किसी विश्वास को व्यक्त करते हैं, जो सत्य या असत्य का विषय हो सकता है। किन्तु, मूर एक नैतिक यथार्थवादी भी थे। वे मानते थे कि नैतिक गुण का अस्तित्व होता है एवं यही गुण किसी नैतिक निर्णय को सत्य बनाते हैं, किन्तु ये गुण वैज्ञानिक पदों या सत्यापनीय रूप में विश्लेषित नहीं किये जा सकते हैं। मूर के अनुसार, ये गुण निर्नैतिक हैं; वे अद्वितीय, सरल और तात्विक हैं, इसीलिए अपरिभाष्य और अविश्लेष्य हैं। अतः, जब हम 'शुभ' (किसी नैतिक कथन का एक गुण), के बारे में बात करते हैं, तो यह सारतः अपरिभाष्य

है। यह शुभ पद की सहजज्ञान युक्त समझ है। मूर कहते हैं कि "शुभ" अपरिभाष्य और सरल है, और इसलिए केवल सहज–बोध से जाना जा सकता है।

हालांकि सम्वेगवाद पर चर्चा का आरंभ मूर द्वारा किया गया, लेकिन उनके संज्ञानात्मक मत के कारण, ए. जे. एयर ने उनकी आलोचना करते हुए सम्वेगवाद को पुनः परिभाषित किया। *लैंग्वेज, ट्रुथ, एण्ड लॉजिक* में एयर ने नैतिकता का वैकल्पिक दृष्टिकोण दिया। वे तर्क करते हैं कि नैतिक निर्णय न तो तार्किक सत्य हैं और न ही तथ्यात्मक कथन, और इसीलिए अर्थ के सत्यापनीय मानदण्ड से इसका मिलान नहीं होता है (अर्थ का सत्यापनीय मानदण्ड इस पर लागू नहीं हो सकता है)। एयर के अनुसार, नैतिक अवधारणाएं छद्म–अवधारणाएं हैं या निरर्थक, वे कोई संज्ञानात्मक महत्व नहीं रखती हैं। वे मूल्य–आधारित निर्णय के बजाय, केवल किसी व्यक्ति की किसी कृत्य या व्यक्ति के प्रति सहमति या असहमति की संवेगात्मक अभिव्यक्तियां हैं। अनुमोदन या अननुमोदन की अभिव्यक्ति होने के कारण, वे न तो सत्य हो सकती हैं न ही असत्य, आकर्षण का लहजा (अनुमोदन दर्शाने वाली) या विकर्षण का लहजा (अननुमोदन दर्शाने वाले) से अधिक होने पर ही कुछ सत्य या असत्य कहा जा सकता है।

इस मत का पूर्ण विकास सी. एल. स्टीवेन्सन के द्वारा 'एथिक्स एण्ड लैंग्वेज' एवं अपने अन्य लेखों में किया गया। पाश्चात्य दर्शन में यह कालावधि भाषा–सम्बन्धी मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करने वाले और विश्लेषणात्मक पद्धति के उत्थान के समय के रूप में विशेषित किया जाता है, जिसने नीतिशास्त्र और अन्य तत्सम्बन्धी विषयों जैसे सौन्दर्यशास्त्र, धर्मशास्त्र, इत्यादि की वार्ताओं को भी प्रभावित किया। स्टीवेन्सन का कार्य इसी पृष्ठभूमि में है, और वे किसी वाक्य के तथ्यात्मक पहलू को सम्वेगात्मक पहलू से अलग करते हैं। वे तर्क करते हैं कि नैतिक निर्णय का महत्व इसके सम्वेगात्मक प्रभाव में निहित होता है। किन्तु, स्टीवेन्सन एयर से इस विचार में भिन्न हैं, कि नैतिक निर्णय न केवल किसी व्यक्ति की किसी के बारे में सहमति या असहमति को अभिव्यक्त करते हैं, बल्कि अन्यों को भी इस विश्वास सहभागी होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, जोकि सार्थक नैतिक संघर्षों या मतभेदों का आधार है। यही कारण है कि लोग क्यों अपने नैतिक मतों के पक्ष में तर्क करते हैं, न कि केवल सहमत होने के लिए असहमति प्रकट करते हैं। इस प्रकार स्टीवेन्सन के सम्वेगवाद का मुख्य विचार तथ्य और मूल्य के भेद से उत्पन्न मूलभूत समस्या पर आधारित है, जहाँ भाषायी प्रयोग के मुद्दे भाषा के वर्णनात्मक/वैज्ञानिक/तथ्यात्मक प्रयोग और सम्वेगात्मक/साधारण/मूल्य–आधारित प्रयोग के मध्य विभाजित हैं। नैतिकता की समस्याएं भाषा के असंज्ञानात्मक या मूल्य–आधारित क्षेत्र से सम्बन्धित हैं, न कि भाषा के संज्ञानात्मक या तथ्यात्मक क्षेत्र से।

इन समस्याओं को समझने के लिए सम्वेगवाद के सन्दर्भ में तीन बातों को जानना आवश्यक है। पहली, सम्वेगवादी इस तथ्य की व्याख्या करते हैं कि लोग साधारणतः अपने नैतिक निर्णयों के अनुसार व्यवहार करने के लिए प्रेरित होते हैं। सम्वेगवादी नैतिक निर्णयों का तादात्म्य भावना या अभिवृत्ति (मनोभाव) से करते हैं। संज्ञानवादियों को प्रेरणात्मक सम्बन्ध की व्याख्या में कठिनाई है, क्योंकि वे नैतिक निर्णयों का तादात्मय विश्वासों से करते हैं। दूसरा, सम्वेगवादी निर्नैतिक भूमि पर आधारित नैतिक निर्णयों की व्याख्या करते हैं। तीसरा, सम्वेगवादी नैतिक की व्याख्या अनुभवगम्य के आधार पर करते हैंय यही कारण है कि नैतिक गुण निर्नैतिक या आनुभविक ढंग से परस्पर भिन्नता रखते हैं।

हालांकि, स्टीवेन्सन ने इस पूरी समस्या का समाधान नीतिशास्त्र में 'शुभ' की समझ के माध्यम से करने का प्रयास किया। चर्चा का आरम्भ इस प्रश्न से होता है, यदि 'अ' शुभ है तो हमें ये कैसे ज्ञात होता है कि वो शुभ है? वो कौन सी पद्धति या तरीका है जिसकी सहायता से हम ये जान पाते हैं कि 'अ' शुभ है। उनके अनुसार, 'शुभ' शब्द को अकसर अनुमोदन के पदों में परिभाषित किया जाता है। किन्तु, इस मानदण्ड के माध्यम से भी शुभ की उचित समझ पाना सम्भव नहीं है, और इसीलिए, दार्शनिक विवादों में, यह इस निष्कर्ष की ओर ले जाता है, कि शुभ अपरिभाष्य (परिभाषा सम्भव नहीं) है। लेकिन सम्वेगवादियों के अनुसार, शुभ की सर्वोत्तम नैतिक समझ इसका विशुद्ध सम्वेगात्मक प्रयोग है। उनके लिए, कोई कृत्य या वस्तु शुभ है या नहीं, यह सम्वेगात्मक अनुमोदन या अननुमोदन की कोटियों के माध्यम से ही जाना जा सकता है। यह बहुधा नैतिक मूल्यों के सापेक्षात्मक मूल्यांकन की ओर ले जाता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई किसी व्यक्ति की हत्या करता है क्योंकि वह हत्या करने के कृत्य का अनुमोदन करता है। शुभ क्या है, इसके किसी भी उत्तर को उचित ठहराना कठिनाईपूर्ण है, क्योंकि कोई अन्य इस अनुमोदित कृत्य के अशुभ या अनुचित होने को उचित ठहरा सकता है। कोई व्यक्ति या समूह किसी एक परिस्थिति में किसी कृत्य को अनुमोदित कर सकता है, जबकि कोई अन्य व्यक्ति या समूह किसी अन्य या उसी सन्दर्भ में उस कृत्य को अननुमोदित कर सकता है। अतः कृत्यों के नैतिक मूल्यांकन की सापेक्षता–सम्बन्धी समस्या बनी रहती है।

स्टीवेन्सन इस समस्या की चर्चा अपनी पुस्तक एथिक्स एण्ड लैंग्वेज में करते हैं। "स्टीवेन्सन अनन्यतः अर्थ की उस संगत और स्थिर अवधारणा को इंगित करने पर विचार कर रहे थे, जोकि सम्वेगात्मक और इसी जाति के अन्य अर्थों को सन्दर्भित करती है, और सारतः भाषा के मनोवैज्ञानिक या प्रयोजनात्मक पक्ष से जुड़ी हुई होगी। इस सम्बन्ध में कोई भी आनुभविक दावे नहीं किये गये; यह जो ज्ञात है उसको व्यवस्थित करना है।" (सात्रिसः 1987, पृ. 80)। स्टीवेन्सन कहते हैं कि इनके बीच उलझन का कारण तथ्य और मूल्य के पदों में है, और वह भाषा के विभिन्न प्रयोगों– संज्ञानात्मक और असंज्ञानात्मक प्रयोअग– के मध्य भेद को दुहराते हैं। उनके अनुसार नैतिक निर्णय मूल्य (भाषा के असंज्ञानात्मक प्रयोग) पर आधारित है, न कि तथ्यों (भाषा के संज्ञानात्मक प्रयोग) पर। अतः, सम्वेगवादी नैतिक भाषा के मूल्य–आधारित प्रयोग और इसके नीति–दर्शन में महत्व को रेखांकित करते हैं। स्टीवेन्सन का मानना है कि शुभ का पर्याप्त विवरण विशुद्धतः वर्णनात्मक या तथ्य–आधारित नहीं हो सकता है, क्योंकि "नैतिक कथन" या "नैतिक निर्णय" दूसरों को प्रभावित करने के लिए बनाये जाते हैं, न कि किसी घटना–स्थिति के तथ्यात्मक वर्णन के लिए। सम्वेगवादियों के लिए उन नैतिक निर्णयों के सम्बन्ध में समस्या खड़ी होती है, जो वर्णनात्मक तत्व रखते हैं, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सभी नैतिक निर्णयों में वर्णनात्मक विषय–वस्तु अन्तर्निहित होती है। सम्वेगवादी, दूसरी ओर, तर्क करते हैं कि नैतिक निर्णयों का मुख्य कार्य तथ्यों को दर्शाना नहीं है, बल्कि विश्वासों और कार्यों को प्रभावित करना। लोगों की रुचियों या विश्वासों का तथ्यात्मक विवरण देने के बजाय, वे उन्हें बदलने या तीव्र करने की चाह रखते हैं। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि किसी नैतिक वाक्य में लोगों को प्रभावित करने की शक्ति कैसे आती है– इस प्रभावकारिता का आधार क्या है? स्टीवेन्सन सोचते हैं कि नैतिक निर्णयों में दूसरों को प्रभावित करने की यह शक्ति शब्दों के "गत्यात्मक" प्रयोग से आती है, जो हमें अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति (विस्मयादिबोधक) में समर्थ करती है, मनोदशा बनाती है (कविता), अथवा किसी कृत्य या अभिवृत्ति के प्रति लोगों को उत्तेजित करती है

(वक्तृता, वाक्–कला)। स्टीवेन्सन के द्वारा यहाँ मुख्य भेद प्रयोग और अर्थ की अवधारणाओं के मध्य किया जाता हैः अर्थ, उनके अनुसार, गत्यात्मक (गतिशील) प्रयोग के साथ नहीं बदल सकता है। स्टीवेन्सन के लिए, "अर्थ" का तादात्म्य उन मनोभाविक अर्थों/सन्दर्भों या आशयों से है जिससे किसी शब्द का उच्चारण/अभिव्यक्ति सम्बन्धित होने की प्रवृत्ति रखती है। यह प्रवृत्ति उन सभी में अनिवार्यतः होनी चाहिए जो भाषा बोलते हैं; यह अनिवार्यतः आग्रही होना चाहिए; शब्द के उच्चारण के सन्दर्भ से अधिक या कम, परन्तु स्वतन्त्र रूप में महसूस की जानी चाहिए; शब्द का अर्थ वस्तुनिष्ठ होना चाहिए, सन्दर्भ या प्रसंगानुसार परिवर्तित नहीं हो सकता है। और भाषा के गत्यात्मक प्रयोग से सम्बन्धित अर्थ का प्रकार सम्वेगात्मक अर्थ होता है।

किसी शब्द का सम्वेगात्मक अर्थ उसके प्रयोग के इतिहास द्वारा विकसित वो क्षमता है जिससे अन्य लोगों के अन्दर भावनात्मक प्रतिक्रिया प्रवाहित होती है। ये उस शब्द के साथ जुड़ा भावनाओं का तात्कालिक प्रभाव है। लोगों में भावनात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने की क्षमता शब्दों में गहराई से जुड़ी होती है । उदाहरण के तौर पर, खुशी का इजहार करने के लिए विस्मयादिबोधक 'हाय !' का प्रयोग करना कठिन है। इस प्रकार की भावनात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने की क्षमता शब्दों के साथ (अन्य कारणों के मध्य) इतनी गहराई से जुड़ी है कि उसे "अर्थ"कहना ही उचित लगता है। (स्टीवेन्सनः1944, पृ. 23)

सम्वेगात्मक अर्थ नैतिक निर्णयों के क्रियाशील उद्देश्य का सहायक है। शुभ का, सामान्य रूप से, एक आकर्षक सम्वेगात्मक अर्थ है, जो किसी निर्णय को अनुकूल रुचि उत्पन्न करने में समर्थ बनाती है। अतः, "यह शुभ है" अन्तर्निहित करता है "मुझे ये पसंद है, आप भी ऐसा करें।"ऐसे मामलों में जहाँ "शुभ" का प्रयोग नैतिक अर्थ में हो रहा है, एक नैतिक वाक्य किसी आदेश से इस रूप में भिन्न है कि ये किसी व्यक्ति को बहुत ही सूक्ष्मता के साथ परिवर्तन करने में समर्थ बनाता है। "शुभ" का नैतिक रूप से संवेगात्मक अर्थ एवं निर्नैतिक रूप से सम्वेगात्मक अर्थ एक दूसरे से भिन्न हैं; शुभ का सम्वेगात्मक अर्थ अनुमोदन की तीव्रतर भावना से सम्बन्धित है, किसी कार्य करने की मांग भी करता है। यह श्रोता और वक्ता के मध्य केवल सहमति के बारे में नहीं है। किसी नैतिक अनुमोदन के मामले में, उसके निर्णय के अनुसार कृत्य होने पर, व्यक्ति संतुष्टि की भावना का अहसास करता है; किन्तु, निर्णय के अनुसार कृत्य न होने पर असंतुष्टि होती है। इस प्रकार, शुभ की नैतिक सम्वेगात्मक अर्थ, लगभग इस तरह है "मैं इसका नैतिक अनुमोदन करता हूँ; आप भी ऐसा ही करो।" जब कोई व्यक्ति किसी बात के प्रति नैतिक अर्थ में सहमति जताता है तो वो उस विचार के आगे प्रसारित होने पर एक अर्थपूर्ण सुरक्षा की भावना का एहसास करता है एवं ऐसा ना होने पर क्रोधित या विरक्त होता है । अतः स्टीवेन्सन के लिए, "शुभ" का नैतिक रूप से सन्वेगात्मक अर्थ है "मैं नैतिक रूप से इसे अनुमोदित करता हूँ, आप भी ऐसा करें"।

इस अर्थ को ध्यान में रखते हुए स्टीवेन्सन ये बताने का प्रयास करते हैं कि उनकी शुभ की परिभाषा सार्थक नैतिक असहमति के लिए सम्भावना बनाती है, जोकि साधारण आत्मनिष्ठवाद या व्यक्तिनिष्ठवाद में सम्भव नहीं है। नैतिक रुचियों में असहमतिके सन्दर्भ में, स्टीवेन्सन सर्वप्रथम "विश्वास में असहमति" और "अभिवृत्ति में असहमति" में भेद करते हैं, जहाँ "रुचि" का अर्थ मोटे तौर पर नैतिक अनुमोदनों से भी है। स्टीवेन्सन, नीतिशास्त्र के सन्दर्भ में असहमतियों को हमेशा रुचियों में असहमति बतौर देखते हैं।

नीतिशास्त्र में यह रुचियों में असहमति है। जब क कहता है 'यह शुभ है', और ख कहता है, 'नहीं, यह अशुभ है,' तब हमारे पास सुझाव और प्रति–सुझाव का मामला है। प्रत्येक दूसरे की रुचि को पुनर्दिशा देने का प्रयास कर रहा है। यहाँ किसी प्रभुता रखने वाली की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रत्येक दूसरे के प्रभाव को सुनने का इच्छुक है; लेकिन प्रत्येक दूसरे को प्रभावित करने का प्रयास कर रहा है। इस आशय में वे असहमति रखते हैं। (स्टीवेन्सनः 1944, पृ. 27)

स्टीवेन्सन आगे तर्क करते हैं कि जब दो व्यक्तियों के मध्य असहमति होती है, तो यदि यह मान लें कि वे आनुभविक पद्धति का सर्वांगीण रूप में, संगत ढंग से, और बिना किसी दोष के प्रयोग करने के बावजूद वे मामले के आनुभविक विचारण के मूल्यांकन की सहायता से भी असहमति का समाधान करने में समर्थ नहीं होते हैं। वह इस सम्बन्ध में एक उदाहरण देते हैं, जिसमें दो पक्ष सभी तथ्यों पर सहमत होने के बावजूद भी नैतिक असहमति रखते हैं। दृष्टान्ततः, अ संवेदनशील है, और ब का नहीं। वे बहस करते हैं कि क्या सरकार का किसी लोककल्याणकारी कार्य हेतु धन खर्चना उचित है या नहीं। मान लीजिए कि उन्होंने सरकार के खर्च के सभी तथ्यात्मक परिणामों का पता लगा लिया है। तब भी यह सम्भव है कि अ और ब खर्च सम्बन्धी नैतिक दृष्टिकोण में असहमत हों। उनकी रुचियों में असहमति का कारण सीमित तथ्यात्मक ज्ञान न होकर अ का संवेदनशील और ब का संवेदनशून्य होना है। अब पुनः, यदि इस दृष्टान्त में हम सम्मिलित व्यक्तियों के सन्दर्भ में एक विशेष विचारणा करते हैं– कि अ निर्धन और बेरोजगार है, और ब धनी। अब फिर भी हम पाते हैं कि उनके मध्य असहमति भिन्न–भिन्न आनुभविक तथ्यों के कारण नहीं है। यह असहमति उनकी भिन्न–भिन्न सामाजिक स्थितियों, और उनके विशिष्ट स्वार्थों के कारण है। दोनों सरकार के खर्च के सम्बन्ध में स्वयं के अनुमोदन या अननुमोदन के आधार पर एक–दूसरे के विश्वासों को प्रभावित करने का प्रयास करेंगे। दोनों इस तथ्य पर सहमत हैं; किन्तु, मामले में अपनी अभिवृत्तियों में सहमत नहीं हैं। अतः, विज्ञान इनकी असहमति का समाधान नहीं कर सकता है। यह अभिवृत्तियों में असहमति, न कि विश्वासों में असहमति है। आनुभविक तथ्यों की सूचना के द्वारा उनके विश्वास समान हैं; किन्तु मामले के तथ्यों के प्रति उनकी अभिवृत्तियां भिन्न–भिन्न हैं, जोकि उनकी असहमति का कारण है। महत्वपूर्ण यह है कि, स्टीवेन्सन यह नहीं कहते कि इस तरह की नैतिक असहमति के मामलों में नैतिक सहमति या नैतिक अनुमोदन पर नहीं पहुँच सकते हैं। वास्तव में एक रास्ता है। उनके अनुसार, लेकिन यह रास्ता बौद्धिक नहीं है– बल्कि यह निर्बौद्धिक प्रेरणा का रास्ता है।

यदि नैतिक असहमति विश्वासों में असहमति पर आधारित नहीं है, तो क्या इसके समाधान का अन्य कोई उपाय है? यदि "उपाय" से किसी का तात्पर्य बौद्धिक उपाय से है, तब कोई भी उपाय नहीं है। लेकिन किसी भी स्थिति में एक "उपाय" है। पूर्वोक्त उदाहरण को पुनः लेते हैं, जिसमें असहमति अ की संवेदनशीलता और ब की संवेदनशून्यता के कारण है। क्या उन्हें यह कहकर इसे समाप्त कर देना चाहिए कि यह तो हमारे भिन्न–भिन्न मनोभावों के कारण है? आवश्यक रूप से नहीं, अ, दृष्टान्ततः, अपने प्रतिपक्षी के स्वभाव को बदलने का प्रयास कर सकता है। वह अपने उत्साह को– निर्धनों के संघर्षों को प्रस्तुत करके– इस तरह से रख सकता है कि वह अपने प्रतिपक्षी को जीवन का भिन्न आयाम दिखा सके। वह अपनी भावनाओं के संसर्ग से, एक प्रभाव पैदा कर सकता है जो ब के स्वभाव को बदल दे, और निर्धनों के प्रति उसमें सहानुभूति पैदा कर दे, जो उसमें पहले उपस्थित नहीं थी। नैतिक सहमति प्राप्त

करने का यही एक रास्ता है, यदि वास्तव में कोई रास्ता है तो। (स्टीवेन्सनः 1944, पृ. 29)

स्टीवेन्सन द्वारा नैतिक संवेगवाद के पक्ष में तार्किक निष्कर्ष प्रस्तुत करने के बाद भी उनके सिद्धांतों की मैकनटायर एवं अन्य दार्शनिकों ने आलोचना की है। सम्वेगवाद पर ये आरोप लगाया जाता है कि वो नैतिक विवेचन एवं विवादों में बौद्धिक तर्कों की महत्वपूर्ण भूमिका को समाहित नहीं करने में असमर्थ है। यद्यपि, यह इस बात पर जोर देता है कि नैतिक चर्चाओं के द्वारा किस प्रकार दूसरों के व्यवहार को प्रभावित किया जा सकता है। कभी–कभी दार्शनिक कहते हैं कि सम्वेगवाद कोई नया सिद्धान्त नहीं है, असंज्ञानवाद का विस्तारित रूप है, और इसलिए इसमें कहने को कुछ भी विशेष नहीं है। दूसरी ओर कभी–कभी इस पर व्यक्तिनिष्ठवाद का एक रूप होने का आरोप लगाया जाता है। व्यक्तिनिष्ठ पद के एक सन्दर्भ में सम्वेगवादी दार्शनिक इस आरोप को दृढ़तापूर्वक निरस्त कर सकते हैं। परन्तु ये उत्तर, व्यक्तिनिष्ठता से जुड़े मुख्य मुद्दों का उत्तर देने में सक्षम नहीं है। इस आरोप के अनुसार सम्वेगवादी के लिये अपनी वैयक्तिक भावनाओं के अतिरिक्त उचित एवं अनुचित में भेद करने का कोई मापदण्ड नहीं है। परंतु कुछ ऐसे दार्शनिक हैं जो इस बात को ना मानते हुए वस्तुनिष्ठ सम्वेगवाद के पक्ष में तर्क देते हैं।

बोध प्रश्न II

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) चार्ल्स स्टीवेन्सन के सम्वेगवाद के मुख्य बिन्दु क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

13.5 सारांश

चार्ल्स स्टीवेन्सन का सम्वेगवाद सुदृढ़ तार्किक आधार रखता है। सम्वेगवाद के तर्क का सार नैतिक रूप से 'शुभ' शब्द की समझ पर आधारित है। अतः, सम्वेगवाद में, स्टीवेन्सन ने शुभ को परिभाषित करने के अनेक तरीके विकसित किये हैं। इस सम्वाद का आधार नैतिक निर्णयों की संज्ञानात्मक और असंज्ञानात्मक समझ के मध्य वाद–विवाद है।

13.6 कुंजी शब्द

निर्णय : कौन सा कर्म करना उचित है इस विषय में सही समझ होने की क्षमता।

अर्थ : वह विचार जो किसी शब्द या शब्दों के समूह, वाक्यांश से व्यक्त होता है । दूसरे शब्दों में ये वो विचार है जो कोई व्यक्ति उन शब्दों या चिन्हों के प्रयोग से व्यक्त करना चाहता है। लेकिन नीतिशास्त्र में दार्शनिकों ने इसे वस्तुनिष्ठ ना मानकर व्यक्तिनिष्ठ माना है।

तथ्य : ऐसा कुछ जो सच में अस्तित्वमान हो और यह अस्तित्व बाह्य जगत में हो।

13.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

एयर, ए. जे. *लैंग्वेज, ट्रूथ एण्ड लॉजिक.* पैंग्विन बुक, 1971.

महोन, जेम्स एडविन. "मैकिन्टायर एण्ड इमोटिविस्ट्स". इन फ्रैन ओश्रौरके (एड.), व्हाट हेपिन्ड इन एण्ड टू मोरल फिलोसॉफी इन द ट्वनटीयथ सैन्चुरी. युनिवर्सिटी ऑफ नोटरे डेम प्रेस, 2013.

मिलर, एलेक्जेन्डर. "इमोटिविज्म एण्ड द वैरिफिकेशन प्रिंसिपल". ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ऑन बिहाफ ऑफ द एरिस्टोटेलियन सोसाइटी, 98: 103–124.

मूर, जी. ई. *प्रिंसीपिआ एथिका.* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1983.

वैलमैन, कार्ल. "इमोटिविज्म एण्ड एथिकल ऑबजैक्टिविटी". नॉर्थ अमेरिकन फिलोसॉफिकल पब्लिकेशन्स, 5/2: 90–99.

स्टीवेन्सन, चार्ल्स लेसली. *एथिक्स एण्ड लैंग्वेज.* न्यू हैवेनः येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1944.

स्टीवेन्सन, चार्ल्स लेसली. "द इम्मोटिव मीनिंग ऑफ एथिकल टर्मस" माइंड, 46/181: 14–31.

स्टीवेन्सन, चार्ल्स लेसली. "परसुएसिव डेफिनेशन" माइंड, 47/187: 331–350.

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) सम्वेगवाद ने उपयोगितावाद और काण्ट के नीति–दर्शन के विकल्प रूप में जन्म लिया। वैज्ञानिक आधिपत्य के युग में, जहाँ विज्ञान नैतिक निर्णयों स्वीकार्य हैं या नहीं, का निर्णय करने में मुख्य भूमिका निभा रहा था, सम्वेगवाद ने वहाँ तथ्य और मूल्य के भेद पर ध्यान केन्द्रित करवाने का प्रयास किया, और इस विचार को चुनौती दी कि नैतिक समस्याओं का समाधान तथ्यों पर सहमति या असहमति की पद्धति से नहीं हो सकता है।

2) सम्वेगवाद का विकास एक ऐसे अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त के रूप में हुआ है जो कुछ प्रमुख आधारभूत नीतिशास्त्रीय समस्याओं का समाधान प्रदान करता है। नीतिशास्त्र में नैतिक पदों जैसेकि शुभ को परिभाषित करना ऐसी ही एक समस्या है। ऐसा करने के प्रयास में यह नीतिशास्त्र के कुछ अन्य मुद्दें जैसे है–करना चाहिए, के विवाद, तथ्य एवं मूल्य का भेद आदि पर भी प्रकाश डालता है।

बोध प्रश्न II

1) स्टीवेन्सन के सम्वेगवाद के कुछ मुख्य बिन्दु निम्नवत् हैं,

   अ) नैतिक निर्णयों का महत्त्व उनके सम्वेगात्मक प्रभाव में निहित होता है,

   आ. नैतिक मुद्दों का समाधान मुद्दे के आनुभविक विचारण के मूल्यांकन के माध्यम से नहीं किया जा सकता है,

   इ) नैतिक असहमति अभिवृत्ति/मनोभाव में असहमति है, न कि विश्वासों में असहमति,

   ई) नैतिक असहमति का समाधान निर्बौद्धिक प्रोत्साहन से किया जा सकता है।

इकाई 14 परामर्शवाद : आर. एम. हेयर*

रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 परिचय

14.2 परिभाषा

14.3 नीति–दर्शन में परामर्शवाद का महत्त्व

14.4 दार्शनिक मत

14.5 सारांश

14.6 कुंजी शब्द

14.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य है,

- परामर्शवाद सम्बन्धी हेयर के नीति–दर्शन की व्याख्या करना,
- सामान्यतः नीतिशास्त्र के क्षेत्र में परामर्शवाद की भूमिका एवं विशेष रूप से नीतिशास्त्र के मूल प्रश्नों पर इसकी प्रतिक्रिया की भी व्याख्या करना।

14.1 परिचय

हम परामर्शवाद के बीज सुकरात, अरस्तु, ह्यूम, काण्ट और मिल के दर्शनों में देख सकते हैं, परन्तु इस अधि–नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त के मुख्य विचारक दार्शनिक रिचर्ड मेर्विन हेयर (1919–2002) थे। नैतिक विचारों (संलापों) के विश्लेषण के माध्यम से, हेयर ने 'वरीय उपयोगितावाद' का औचित्य सिद्ध किया। परामर्शवाद एक नीतिशास्त्रीय या अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है जो कि रिचर्ड मेरविन हेयर नामक दार्शनिक द्वारा प्रतिपादित किया गया था। हेयर ने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान शाही तोपखाने में सेवा दी और जापान द्वारा युद्धबन्दी बना लिये गये। द्वितीय विश्वयुद्ध के अनुभव ने हेयर के जीवन और दर्शन, एवं विशेषरूप से इस विचार को कि नीति–दर्शन प्रकृति में कर्तव्य की तरह है और लोगों की सहायता करना नैतिक–प्राणी होना है, को प्रभावित किया (किंगः 2004)।

नीति–दर्शन में, दार्शनिक नैतिक समस्याओं और निर्णयों के सन्दर्भ में अपने विचार एवं मत प्रस्तुत करते हैं और इस प्रकार सभी के पास अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता होती है। परन्तु हेयर के अनुसार, इस प्रक्रिया में अधिकांश दार्शनिक अपना मत रखते हुए दूसरों के बारे में चिंता का अभाव होता है और अपनी बौद्धिकता का भी पूर्ण प्रयोग किए बिना नैतिक निर्णयों के बारे में अपने विचार देते हैं। इसी कारण से

* श्री बंशीधर दीप, व्याख्याता (तर्कशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र), जवाहर महाविद्यालय, पटनागढ़, ओड़ीसा, अनुवादक– डॉ. शिल्पी श्रीवास्तव, सहायक प्राध्यापिका, दर्शन विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली

ऐसे सभी दार्शनिकों के समूह को व्यक्तिनिष्ठवादी या संवेगवादी कहा जाता है । परन्तु हेयर कहते हैं कि दार्शनिकों का एक अन्य समूह भी है जो बौद्धिकता पर जोर देता है। दूसरे शब्दों में, उनके लिए 'है' और '(कर्तव्यपरक या कर्तव्यता) चाहिए' के भेद जैसे नैतिक प्रश्नों का उत्तर देना एक बौद्धिक कार्य है। अतः नैतिक प्रश्नों, समस्याओं और मुद्दों को समझने के लिए बौद्धिकता आवश्यक है। ऐसी परिस्थितियों में आप केवल स्वयं के बारे में नहीं सोचते, अपितु आपके मस्तिष्क में उपस्थित अन्यों के बारे में भी आपको सोचना पड़ता है। दार्शनिकों के इस समूह को वर्णनवादी और कभी–कभी प्रकृतिवादी भी कहा जाता है। प्रकृतिवादियों के अनुसार, नैतिक निर्णय वस्तुनिष्ठ प्राकृतिक तथ्यों से संवादिता रखते हैं और इसलिए उनका वर्णन किया जा सकता है।

हेयर ने इन दो विरोधी विचारों को बहुत ही गंभीरता से लिया और नैतिक प्रश्नों को एक नई दिशा एवं हल देने का प्रयास किया। इन दोनों सिद्धांतों से जुड़ी समस्याओं से जूझते हुए उन्होंने परामर्शवाद नामक एक वैकल्पिक नैतिक सिद्धान्त को विकसित किया (हेयरः 1965)। हेयर के अनुसार, नैतिक निर्णयों इनके वर्णनात्मक अर्थ या तत्त्व की बजाय को इनके मानकीय एवं परामर्शात्मक अर्थ या तत्त्व के रूप में समझा जाना चाहिए।

आर. एम. हेयर ने परामर्शवाद को अपनी रचनाओं, मुख्यतः, *दि लैंग्वेज ऑफ मॉरल्स* (1952), *मॉरल थिंकिंग* (1981), *फ्रीडम एण्ड रीजन* (1965) में चित्रित और विकसित किया। हेयर दावा करते हैं कि कोई भी नैतिक पद या विधेय (जैसेकि, शुभ, अशुभ, उचित, अनुचित, इत्यादि) दो सिद्धान्तों के आधार पर समझे जा सकते हैं, एक है परामर्शात्मकता और दूसरा सार्वभौमिकता। कोई नैतिक निर्णय (सामान्यतः, नैतिक निर्णय वह वाक्य या कथन जिसका विधेय कोई नैतिक पद होता है।) प्रकृति में सार्वभौमिक और परामर्शात्मक होता है। यदि कोई वाक्य एक नैतिक पद रखता है, जोकि सार्वभौमिक और परामर्शात्मक नहीं हो, तो इसका तात्पर्य है कि इस वाक्य को नैतिक निर्णय के रूप में नहीं लिया जा सकता है। इसे दूसरे ढंग से इस तरह कहा जा सकता है कि यदि हम चाहते हैं कि हमारे नैतिक निर्णय नैतिक कृत्य में बदलें, तब हमारे नैतिक निर्णय में सार्वभौमिक और परामर्श की सामर्थ्य होनी चाहिए। हेयर तर्क करते हैं कि यदि हम सार्वभौमिकता और परामर्शात्मकता की अवधारणाओं को मिला दें, तो हम वरीय उपयोगितावाद को प्राप्त करते हैं। वरीय उपयोगितावाद कहता है कि हमारे कृत्य का परिणाम (या प्रतिफल) लोगों की वरीयताओं (पसंदों, तरजीहों) के संतोष का अधिकतम होना चाहिए।

अपनी पुस्तक *फ्रीडम एण्ड रीजन* में उन्होंने दो पक्ष लिए, एक परामर्शवादी युक्ति और दूसरी उपयोगितावादी युक्ति। इन विचारों का आगे हम और गहराई से अध्ययन करेंगे। अपनी इस पुस्तक के अध्याय 6 में उन्होंने अपने मूलभूत विचारों को एक ऐसी परिस्थिति के सन्दर्भ में बताया है जहाँ कि मात्र दो व्यक्तियों की रुचि (तरजीह) का प्रश्न निहित है। इसी पुस्तक के सातवें अध्याय में वे उपयोगितावाद के सन्दर्भ में तर्क प्रस्तुत करते हुए ऐसे मामलों की चर्चा करते हैं जहाँ दो से अधिक समूहों की रुचियों का प्रश्न निहित हो।

14.2 परिभाषा

परामर्शवाद दावा करता है कि नैतिक कथनों में अर्थ का एक ऐसा तत्त्व निहित रहता जो नैतिक कथनों को परामर्शकारी बनाता है। दूसरे शब्दों में, परामर्शवाद एक ऐसा

सिद्धान्त जिसके अनुसार जब नैतिक पदों का प्रयोग नैतिक निर्णय बनाने में होता है तो यह तार्किक निगमन है कि वे सार्वभौमिक परामर्श देते हैं। नैतिक कथन दो तत्त्व रखते हैं, एक वर्णनात्मक और दूसरा परामर्शात्मक। परामर्श का अर्थ है किसी व्यक्ति को (स्वयं या किसी अन्य को) कोई कार्य करने के लिए परामर्श देना, कि वह व्यक्ति इस परामर्श को कृत्य में बदल दे। किसी कार्य के लिए परामर्श देने का अर्थ है स्वयं और किसी अन्य को इस आदेश के प्रति सहमति देना कि यह कार्य किया जाना चाहिए। यहाँ आदेश के प्रति सहमति व्यक्त करने का अर्थ है कि व्यक्ति उस कार्य को करने के लिए स्वतः प्रेरित है। सार्वभौमिक परामर्श सार्वभौमिक आदर्शों पर आधारित होते हैं। सार्वभौमिक परामर्श न केवल यह कहता है कि अमुक कार्य करो, बल्कि उस कार्य को करने की सलाह भी देता है। सलाह का अर्थ है कि यहाँ बौद्धिकता का समावेश है और यह बौद्धिकता सदा सार्वभौमिक आदेशों के रूप में व्यक्त होती है। सार्वभौमिक परामर्श किसी कार्य को करने का इसलिए कह पाता है क्योंकि यह कुछ विशेषताएं धारण करता है, अतः उस कृत्य करने का परामर्श, उन सभी कृत्यों का परामर्श है, जो उन विशेषताओं को रखते हैं। हम यदि "करना चाहिए" को कोई नैतिक निर्णय देने के लिए इस कथन–रूप, "अ को कृत्य क करना चाहिए", तो यह इस नियम, "परिस्थिति स में किसी भी व्यक्ति को कृत्य क करना चाहिए" को पूर्वमान्यता के रूप में लेता है, अतः अ का कृत्य क को करना परिस्थिति स में कृत्य क को करने की एक घटना–विशेष माना जायेगा। इस प्रकार, इस सिद्धान्त के अनुसार, "यदि आप परिस्थिति स में है, तो आपको कृत्य क करना चाहिए और यदि मैं परिस्थित स में हूँ, तो मुझे कृत्य क करना चाहिए"। इस पश्चातवर्त्ती कथन का निहितार्थ यह होगा कि "परिस्थित स में कृत्य क करो" और "परिस्थिति स में मुझे कृत्य अ करने दो"। यदि हम इस पर सहमत हैं तब इसका आगामी निहितार्थ यह है कि कोई इस बात का इच्छुक है कि यह कृत्य स्वयं उसके द्वारा और दूसरों के द्वारा किया जाना चाहिए। इस प्रकार, जब 'कर्तव्यपरक चाहिए–कथनों' के द्वारा नैतिक निर्णय दिये जाते है, तब इन कथनों की सहायता से यह सलाह दी जाती है कि हमें और अन्यों को कैसे कार्य करना चाहिए और ये सलाहें या परामर्श इस सामान्य सिद्धान्त पर आधारित होती हैं कि वह कृत्य स्वयं हमारे द्वारा और अन्यों द्वारा किया जाए। (डाहलः 1987)

नैतिक कथनों का वर्णनात्मक तत्त्व संस्कृति और व्यक्ति–सापेक्ष होता है (प्रत्येक संस्कृति और प्रत्येक व्यक्ति के मामले में अलग होने की सम्भावना वाला)। यह तत्त्व व्यक्ति–समय–स्थान–विशिष्ट या सापेक्ष होता है। दूसरी ओर, नैतिक कथनों का परामर्शात्मक तत्त्व स्थिर प्रकृतिवाला होता है। यही कारण है कि, परामर्शवाद नैतिक–असहमतियों और नैतिक निर्णयों के लिए आधारभूमि तैयार करता है।

हेयर के परामर्शवाद के अनुसार, नैतिक निर्णय मात्र वर्णनात्मक या भावनाओं की अभिव्यक्ति ना होकर परामर्शात्मक होते हैं। आगे वे ये भी तर्क देते हैं कि नैतिक परामर्श निर्नैतिक परामर्श से इस रूप में भिन्न हैं कि नैतिक परामर्शों को सार्वभौमिक बनाया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति किसी कार्य को उचित मानता है तो उसे उसके समान अन्य कार्यों को भी उचित मानना होगा। सार्वभौमिकता के इस विचार पर काण्ट के दर्शन का प्रभाव हो सकता है। हेयर का यह मानना था कि परामर्शवाद को सबसे बेहतर तरीके से इस तरह समझा जा सकता है कि नैतिक निर्णय नैतिक–सापेक्षतावाद को नजरन्दाज करते हुए कृत्यों का पथ–प्रदर्शन करते हैं और नैतिक दावों के बौद्धिक सत्यापन के लिए आधार प्रदान करते हैं। इस प्रकार उन्होंने नैतिक विचार की दो मुख्य धाराओं काण्ट की नैतिकता (सार्वभौमिकता के सिद्धान्त से

जुड़ी) एवं उपयोगितावाद का मेल किया। उनके सभी कार्यों में हम गंभीर चिंतन, धाराप्रवाह लेखन, और नैतिकता एवं बौद्धिक जिज्ञासा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता पाते हैं।

14.3 नीति–दर्शन में परामर्शवाद का महत्त्व

हेयर का परामर्शवाद बहुत महत्वपूर्ण सिद्धान्त है विशेष तौर पर इसलिए कि ये नैतिक निर्णयों को सार्वभौमिक और बौद्धिक रूप में समझने में लोगों की सहायता करता है। उन्होंने परामर्शवाद इसलिए विकसित किया क्योंकि ये बड़े जनसमूह को केन्द्रित करता है। निश्चित तौर पर परामर्शवाद कुछ बड़ी नैतिक समस्याओं से सम्बन्धित है जैसे, नैतिक निर्णयों का आधार बुद्धि है या व्यक्ति विशेष की पसंद अथवा मत। हेयर ने 'है' और 'होना चाहिए' के प्रश्न पर भी विचार किया। उन्होंने परम्परागत सिद्धान्तों का अनुसरण नहीं किया, यद्यपि अपने समय के सभी सिद्धांतों के प्रति आलोचनात्मक रुख अपनाया। इसीलिए हम पाते हैं कि वे सम्वेगवाद, वर्णनात्मकवाद, उपयोगितावाद और काण्ट की कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के आलोचक थे। हेयर ने इन सभी नैतिक सिद्धांतों पर गहन चिंतन किया एवं इन सिद्धान्तों में कुछ प्रश्नों का उत्तर ढूंढने में असफल रहे। इसीलिए उन्होंने इन सिद्धांतों के कुछ उचित भाग को लेकर परामर्शवाद का सिद्धान्त विकसित किया। उदाहरण के तौर पर उन्होंने अपनी लेखनी में सम्वेगवाद के कुछ भाग को समर्थन दिया परन्तु कुछ अन्य मामलों में असहमति व्यक्त की। हेयर यह मानते हैं कि नैतिक कथन/निर्णय ना तो तथ्यों का विवरण देते हैं और ना ही मनोभावों की अभिव्यक्ति हैं। उनके अनुसार, नैतिक निर्णय परामर्शात्मक होते हैं।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी: क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) नैतिक दर्शन में परामर्शवाद का क्या महत्त्व है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) परामर्शवाद को अधि–नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त क्यों कहा जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.4 दार्शनिक मत

हेयर मूर के बाद सबसे उल्लेखनीय दार्शनिकों में से एक हैं। वे ह्यूम, काण्ट, मूर, रसेल आदि दार्शनिकों से प्रभावित थे। ह्यूम के दर्शन से वे तथ्य एवं मूल्यों के भेद के विचार से प्रभावित हुए, मूर एवं रसेल का विचार कि दर्शन का प्रमुख कार्य प्रत्ययों का गहन विश्लेषण है उन्हें प्रभावित करता है और काण्ट से उन्होंने नैतिक विचारों में सार्वभौमिकता और बौद्धिकता के विचारों को अनुग्रहित किया। वे उपयोगितावाद से भी प्रभावित थे । अन्य शब्दों में कहें तो, हेयर का परामर्शवाद, तीन प्रमुख नैतिक विचारों पर आलोचनात्मक–चिंतन एवं मतभेद से जन्म लेता है, जो कि हैं – सम्वेगवाद, उपयोगितावाद एवं काण्ट का नैतिक दर्शन। उन्होंने अपनी पुस्तक, लैंग्वेज ऑफ मॉरल्स में विवरणात्मक/वर्णनात्मक एवं परामर्शात्मक अर्थ में भेद किया और साथ ही नैतिक निर्णयों और प्रत्ययों को बौद्धिक रूप से समझने का प्रयास किया। परामर्शात्मक अर्थ को आदेशों/विधानों के सन्दर्भ में परिभाषित किया जाता है।

कोई कथन परामर्शात्मक होता है यदि यह तार्किकरूप से कम से कम एक आदेश अन्तर्निहित करता हो, यदि विशुद्ध तथ्यात्मक कथनों के संयोजन में आवश्यक हो और किसी आदेश को स्वीकृति देने का तात्पर्य है किसी कृत्य का परामर्श। वर्णनात्मक अर्थ सत्यता–मूल्य के सम्बन्ध में परिभाषित किया जाता है अर्थात् एक कथन उस सीमा तक वर्णनात्मक होता है कि इसके उचित अनुप्रयोग हेतु तथ्यात्मक शर्तें इसके अर्थ को परिभाषित करती है। (हेयरः 1952)

लेकिन बाद में अपनी पुस्तक *फ्रीडम एण्ड रीजन* (1965) में उन्होंने अनेक मुद्दों पर अपने मत को स्पष्ट किया और अपने दृष्टिकोण को संशोधित किया। बेन (2002) हेयर के संशोधित दृष्टिकोण को इस तरह दर्शाते हैंः

1) हेयर स्वीकारते हैं कि नैतिक विधेय (उदाहरणार्थ शुभ, अशुभ, उचित, इत्यादि) वर्णनात्मक अर्थ रखते हैं,
2) वर्णनात्मक अर्थ नैतिक विधेयों के लिए द्वितीयक है,
3) नैतिक विधेयों का प्राथमिक अर्थ अ–वर्णनात्मक होता है, जोकि परामर्शात्मक अर्थ है,
4) हेयर तथ्य और मूल्य के मध्य भेद स्वीकारते हैं,
5) हम जगत के वर्णनात्मक (तथ्यात्मक) गुणों से नैतिक निर्णयों के बारे में कोई भी तार्किक अनुमान नहीं कर सकते हैं।

हालांकि, हेयर के नैतिक सिद्धान्त के ये सभी आयाम जिनकी ऊपर चर्चा की गई है उनके सिद्धान्त को बहुत ही बौद्धिक, व्यावहारिक और सभी पर समान रूप से लागू होने वाला बनाते हैं। इसीलिए, हेयर की रुचि केवल नैतिक समस्याओं की सैद्धान्तिक व्याख्या करने में ही नहीं थी, अपितु वे नैतिक कर्म एवं व्यवहार को भी बहुत गंभीरता से लेते हैं। इसका कारण द्वितीय विश्व युद्ध के समय के उनके व्यक्तिगत अनुभव हो सकते हैं। सिद्धान्त और व्यवहार के बीच ये गहरा सम्बन्ध, हेयर के नैतिक दर्शन को एक मजबूती और विशेष आयाम प्रदान करता है। हेयर के नीति–दर्शन का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष, उनके दर्शन में तर्क–बुद्धि और बौद्धिकता के विशेष आयाम का होना है। हमारे नैतिक क्रिया–कलाप बुद्धि पर आधारित होते हैं अथवा उनका आंकलन भी बुद्धि, सत्यता और तर्क के आधार पर किया जाता है और इसीलिए वे परामर्शात्मक

होते हैं। यही कारण हो सकता है कि हेयर परामर्शवाद के साथ सार्वभौमिकता पर भी जोर देते है। उनके लिए नैतिक निर्णय न केवल सार्वभौमिक होते हैं, अपितु परामर्शात्मक भी होते हैं। सार्वभौमिकता, हेयर के अनुसार, वर्णनात्मक वाक्यों का एक गुण है, जिसे विधेयों में बिल्कुल समान ढंग से या जैसा है वैसे ही प्रासंगिक रूप में प्रयोग किया जाता है। (कोल्सः 1963)

नैतिक विषयों में बौद्धिकता को आसानी से समझा जा सकता है यदि हम हेयर के नैतिक निर्णयों के दो विशेष आयामों को आसानी से समझें। ये दो आयाम हैं – सार्वभौमिकता एवं परामर्शात्मकता।

यदि आप किसी विशेष परिस्थिति में ये निर्णय लेते हैं कि आपको क्या करना चाहिए अथवा किसी परिस्थिति–विशेष में आप क्या परामर्श दे सकते हैं, तो उस क्षण हम इस कृत्य को सार्वभौमकता प्रदान करते हैं। इस घटना–क्रम में, आप किसी कृत्य को करने हेतु चुनते हैं, लेकिन आप महसूस करते हैं कि जब आप इस कृत्य को सार्वभौमिक बनाते हैं, और मान लेते हैं कि यह कृत्य किसी ऐसे परामर्श को जन्म देता है जो आपको अस्वीकार्य है। इस मामले में, आप इस कृत्य को सार्वभौमिक नहीं बना सकते हैं, इसका आशय है कि इस कृत्य से उत्पन्न परामर्श "कर्तव्यकारी चाहिए (ऑट)" नहीं बन सकता है।

एक सामान्य नैतिक नियम/सिद्धान्त तो लक्षण रखता हैः परामर्शात्मकता और सार्वभौमिकता, ये दोनों लक्षण हेयर के दर्शन की मुख्य नींव है। "सामान्य या सार्वभौमिक" पद (जैसे मानव या यूनानी) "एकवाची" पद (जैसे सुकरात) से भिन्न है। लेकिन "सूत्र (मेक्सिम)" सार्वभौमिक हो सकते हैं और एकवाची या विशेष नहीं, क्योंकि सूत्र व्यक्ति–विशेषों को संदर्भित नहीं करते, वे सार्वभौमिक की श्रेणी में रखे जा सकते हैं, न कि विशिष्टों की, स्तर के भेद से कर्ता के एक वृहद समूह की पहचान की जाती है ("सदा सत्य सुबूत दो" में "सदा सत्य बोलो" से अधिक विशिष्टता है और "सदा शपथ लेने पर सत्य सबूत दो" से अधिक सामान्यता)। उनके लेख "यूनिवर्सलाइजेबिलिटी" (1954) इस बात पर जोर देता कि ये हमारा व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है कि हम ऐसे निर्णय लें जो सैद्धान्तिक निर्णय हों। उन्होने अपना अगला महत्त्वपूर्ण विचार अपनी दूसरी पुस्तक *फ्रीडम एण्ड रीजन* (1965) में प्रस्तुत किया जहाँ परामर्शात्मकता और सार्वभौमिकता के आकारिक गुणों ने "स्वर्ण सिद्धान्त" की युक्ति को जन्म दिया। इम स्वर्ण सिद्धान्त को परामर्शात्मकता और सार्वभौमिकता के सन्दर्भ में भली भांति देखने के लिए हमें एक उदाहरण को समझना होगा जो हेयर (1965) ने अपनी रचनाओं में दिया है।

'अ' ने 'ब' से धन उधार लिया है और 'ब' ने 'स' से धन उधार लिया, और यहाँ यह नियम है कि उधार देने वाला उधार ना लौटाने पर देने वाला लेने वाले को कारावास में डलवा सकता है। 'ब' स्वयं से यह प्रश्न करता है कि 'क्या मैं ये कह सकता हूँ कि क्या 'अ' के विरूद्ध मुझे इस नियम का प्रयोग करना चाहिए ताकि वो मेरे पैसे लौटा दे? निस्संदेह वो ऐसा करने का इच्छुक या ऐसा करना चाहता है । अतः, यदि उसके परामर्श या निर्णय को एक सामान्य नियम बनाने का कोई प्रश्न ना होता तो वो निश्चय ही इस परामर्श के लिए सहमत होता कि "अ को कारावास में डाल दिया जाए" परन्तु जब वो इस परामर्श को एक नैतिक निर्णय में' परिवर्तित करने का प्रयास करता है और कहता है कि, "मुझे अ को कारावास में डलवा देना चाहिए क्योंकि उसने मेरा उधार नहीं चुकाया" तो वो ये सोचता है कि इसका अर्थ होगा कि वो इस

सिद्धान्त को स्वीकारे कि "कोई भी व्यक्ति जो मेरे समान स्थिति में हो उसे उधार वापस ना मिलने की परिस्थिति में लेने वाले को कारावास में डलवा देना चाहिए"। परन्तु फिर उसे ये आभास होता है कि "स" भी उसके समान स्थिति में है और यदि किसी भी व्यक्ति को उधार ना चुकाने की स्थिति में लेने वाले को कारावास में डलवा देना चाहिए तो 'स' को उसे कारावास में डाल देना चाहिए। और इस तरह ये नैतिक परामर्श कि "स को मुझे कारावास में डलवा देना चाहिए को सहमति देते ही वो बाध्य हो जाता है (क्योंकि जैसा कि हमने देखा, वो 'चाहिए' का प्रयोग परामर्श के रूप में करता है।) इस एकवाची परामर्श को मानने के लिए कि 'स को मुझे कारावास में डलवा देना चाहिए' और परन्तु ये वो स्वीकार नही करना चाहता। परन्तु यदि वो इसे स्वीकार ना करे तो वो अपना पूर्व निर्णय कि ब उधार न चुकाने के लिए अ को कारावास में डलवा दे को भी अस्वीकार करना होगा। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि पूरी युक्ति निरर्थक हो जाएगी। यदि "चाहिए का सार्वभौमिकता और परामर्शात्मकता के साथ प्रयोग ना किया जाए" य क्योंकि यदि इसे परामर्श के रूप में प्रयोग ना किया गया तो स को मुझे कारावास में डाल देना चाहिए से, स मुझे कारावास में डाल दे के स्तर तक जाना संभव नही होगा। (हेयरः 1965)

पूर्वोक्त उदाहरण सार्वभौमिकता, परामर्शवाद एवं उपयोगितावाद के आधार पर नैतिक निर्णयों को समझने के लिए है। हेयर ने उपयोगितावाद के सिद्धान्त को स्वीकारा क्योंकि यह सिद्धान्त नैतिक विचारों में बौद्धिकता का समावेश करता है। उदाहरण के तौर पर हम दो अलग अलग प्रश्नों को लेते हैं – पहला "हमें कैसे कार्य करने चाहिए ?" और दूसरा "हमें यह कैसे सोचना चाहिए कि हमें कैसे कार्य करने चाहिए?" उपयोगितावादी और सार्वभौमिकता के सिद्धांतों को समझने के लिए ये वाक्य या उदाहरण अत्यन्त उपयोगी हैं क्योंकि पहले वाक्य में आपके कार्य में दूसरे व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध की कोई स्पष्टता नहीं है परन्तु दूसरे वाक्य में है। ये हमें उस स्वर्ण सिद्धान्त को समझने में मदद करता है जो पूर्वोक्त उदाहरण में समझाया गया है। हेयर सार्वभौमिक परामर्शवाद और उपयोगितावाद (वरीय उपयोगितावाद) के मध्य तार्किक सम्बन्ध बनाते हैं। अगर हम ये मानते है कि नैतिक निर्णय लेने में दूसरों को हमारी रूचियों का ध्यान रखना चाहिए तो हमें ये भी मानना होगा कि नैतिक निर्णय लेने में हमें दूसरों की रूचियों पर ध्यान देना चाहिए। इस विचार में यह अन्तर्निहित है कि एक नैतिक विचारक को नैतिक निर्णय बाने में सभी की रुचियों पर इस तरह चिंतन करना चाहिए जैसेकि वे रुचियां उसकी अपनी ही हों। हेयर सम्वेगवाद का पूरी तरह खण्डन नहीं करते। परन्तु वह मानते हैं कि परामर्श नैतिक भाषा का केन्द्रीय तत्त्व है। वह वर्णनात्मकवाद का विरोध करते हैं, जिसके अनुसार नैतिक विधेय (जैसेकि, शुभ, अशुभ, उचित, करना चाहिए, इत्यादि) वस्तुसत् के नैतिक गुणों या लक्षणों का वर्णन हैं।

उन्होंने यह तर्क देते हैं कि परामर्शात्मक भाषा जो कि आदेशों, प्रशंसाओं एवं उपदेशों को सम्बन्धित है उसका अपना एक तार्किक स्वरूप है और वो तर्क के बौद्धिक ढांचे का पालन करती है। बतौर उदाहरण, तथ्यात्मक अनुमानों की तरह, आदेशात्मक अनुमान भी हो सकते हैं। नैतिक परामर्श आदेशों को तार्किकतः अन्तर्निहित करते हैं। लेकिन नैतिक परामर्श इससे अधिक है किय वे न केवल प्रकृति में आदेशात्मक हैं, अपितु सार्वभौमिक भी किए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, यह कहना, "आपको पशुओं की हत्या नहीं करना चाहिए" यह कहना भी है कि "पशुओं की हत्या मत करो।"

पीयर्स बेन अपने आलेख "आर एम हेयर" सार्वभौमिक परामर्श में इच्छाशक्ति या संकल्प की महत्ता को रेखांकित करते हैं। बेन के शब्दों में,

नैतिक निर्णयों की परामर्शात्मकता हेयर को इच्छाशक्ति की दुर्बलता के सन्दर्भ में एक बहकावपूर्ण खिंचाव की स्थिति में ले आती है। यदि कोई व्यक्ति पूरी निष्ठा के साथ स्वयं को एक चाहिए वाला नैतिक निर्णय देता है (उदाहरण के लिए – मुझे समय समय पर दान देते रहना चाहिए) तो हेयर के सिद्धान्त के अनुसार उसे इस निर्णय के अनुरूप कार्य करना चाहिए। परन्तु यदि ऐसा करने की इच्छा ना हो (जिसे लोग इच्छाशक्ति की दुर्बलता कहते है) तो इसका अर्थ है कि या तो कोई सार्वभौमिक परामर्श सम्भव नहीं है या फिर इस परामर्श पर मानसिकरूप से असम्भव है। ऐसे दार्शनिक जो कि इस प्रकार की कठोर सैद्धान्तिक निश्चितता में विश्वास नही रखते, उनके अनुसार इच्छाशक्ति की दुर्बलता (*अकरासिया*) वास्तविक है और इसलिए कोई भी ऐसा सिद्धान्त जिसमें इसका निषेध निहित हो, स्वयं ही त्रुटिपूर्ण है। (बेनः 2002)

बोध प्रश्न II

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) हेयर के परामर्शवाद के सिद्धान्त में बौद्धिकता, परामर्शात्मकता एवं उपयोगितावाद किस प्रकार एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है ?

.....

.....

.....

.....

.....

14.5 सारांश

परामर्शवाद एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है क्योंकि यह नीतिशास्त्र के कुछ मूलभूत प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करता है । जैसे – क्या नैतिक निर्णयों को बुद्धि के आधार पर समझना चाहिए या व्यक्ति–विशेष की अभिरुचि और मत के आधार पर?; नीतिशास्त्र में 'है' और "होना चाहिए" के मध्य क्या अन्तर है? आदि। हेयर का नैतिक दर्शन तीन मुख्य स्तम्भों पर आधारित है – सार्वभौमिकता, परामर्शात्मकता एवं उपयोगितावाद।

14.6 कुंजी शब्द

बौद्धिकता : यह विश्वास या सिद्धान्त जिसका मानना है कि हमारे कार्य और मत बुद्धि पर आधारित होने चाहिए ना कि भावनाओं और व्यक्तिगत मतों पर।

सार्वभौमिकता : एक सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक प्रत्यय, जिसके अनुसार कुछ विचारों को सामान्य या सार्वभौमिक रूप से सभी जगह प्रयोग किया जा सकता है।

उपयोगितावाद : एक दार्शनिक और नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त जिसके अनुसार कोई कार्य नैतिक रूप से शुभ है यदि वो अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख का कारण हो।

14.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

कोलश्स एन. "मिस्टर हेयर ऑन फ्रीडम एण्ड रीजन ". ट्रीनिटी कॉलेज डबलिन, 97: 66–74.

ग्रीफिथ्स, ए. फिलिप्स. "हेयरश्स मोरल थिंकिंग",. रॉयल इन्स्टीट्यूट ऑफ फिलोसॉफी, 58 / 226: 497–511.

बेन पीयरस, "आर. एम. हेयर (1919–2002)", फिलॉस्फी नाऊ, 35, एस्सेस्ड http:// philosophynow-org/issues/35/RM_Hare_1919–2002.

मैडेल, जिओफ्रे, "हेयर'स प्रिस्क्रिप्टिविज्म. द एनालिसिस कमिटी, 26 / 2: 37–41.

डेल, नॉरमेन ओ. "ए प्रोग्नोसिस फॉर यूनिवर्सल प्रिस्क्रिप्टिविज्म". स्प्रिंगर, 51 / 3: 383–424.

जिंक, सिडनी. "ऑबजेक्टीवीजम एण्ड मिस्टर हेयर'स लैंग्वेज ऑफ मॉरल्स". माइंड, 66 / 261: 79–87.

हेयर, आर. एम. *द लैंग्वेज ऑफ मॉरल्स.* ऑक्सफोर्ड: क्लैरेन्डन प्रेस, 1952

हेयर, आर. एम. *फ्रीडम एण्ड रीजन.* ऑक्सफोर्ड: क्लैरेन्डन प्रेस, 1965

हेयर, आर. एम. *मोरल थिंकिंग : इटस लेवल, मेथड एण्ड प्वॉइन्ट.* ऑक्सफोर्ड: क्लैरेन्डन प्रेस, 1981

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) हेयर का परामर्शवाद एक अति महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है क्योंकि इसने सार्वभौमिक और बौद्धिक दृष्टिकोण से नैतिक निर्णयों को समझने में दार्शनिकों की मदद की है। उन्होंने परामर्शवाद को विकसित किया क्योंकि ये एक बड़ी संख्या में लोगों को प्रभावित करता है। निश्चित तौर पर ये कहा जा सकता है कि परामर्शवाद नीतिशास्त्र की कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याओं का हल ढूंढने का प्रयास करता है जैसे नैतिक निर्णयों का आधार बुद्धि है या किसी व्यक्ति की निजी पसंद और मत। हेयर 'है' और 'होना चाहिए' के भेद को भी सम्बोधित करते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात ये है कि उन्होंने किसी भी पारंपरिक नैतिक सिद्धान्त का अनुसरण ना कर के अपने समय के सभी सिद्धांतों की आलोचनात्मक परीक्षा की है।

2) परामर्शवाद एक अधिनीतिशास्त्रीय सिद्धान्त है क्योंकि ये महत्त्वपूर्ण नैतिक समस्याओं को सम्बोधित करता है जैसे कि नैतिक निर्णयों का आधार बुद्धि है या व्यक्ति की अपनी रूचि अथवा मत। हेयर 'है' और 'होना चाहिए' के भेद की भी चर्चा करते है।

बोध प्रश्न II

1) नैतिक विषयों में बौद्धिकता को आसानी से समझा जा सकता है यदि हम हेयर के नैतिक निर्णयों के दो विशेष आयामों को आसानी से समझे । ये दो आयाम हैं – सार्वभौमिकता एवं परामर्शात्मकता। हेयर जब किसी कार्य के सन्दर्भ में सार्वभौमिक सिद्धान्त और परामर्शात्मकता की बात करते है तो वो ये मानते है कि यह सभी व्यक्तियों और सभी परिस्थितियों में लागू होना चाहिए। अतः, हेयर के नीति–दर्शन का अन्यों के बारे समावेशी पक्ष बौद्धिकता और वरीय उपयोगितावाद दोनों को सम्मिलित करता है।

सहायक अध्ययन–सामग्री (हिन्दी भाषा)

सहायक–ग्रन्थ

आत्रेय, भीखनलाल. *भारतीय नीति–शास्त्र का इतिहास.* लखनऊः हिन्दी समिति, 1964.

गुलाबराय. *कर्तव्यशास्त्र.* बनारसः काशी नागरी प्रचारिणी सभा, 1976.

पाठक, दिवाकर. *भारतीय नीतिशास्त्र.* पटनाः बिहार ग्रंथ अकादमी, 1994.

मिश्र, नित्यानन्द. *नीतिशास्त्रः सिद्धान्त और व्यवहार.* नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 2017.

नैटलशिप, रिचर्ड लुई. *प्लेटो के रिपब्लिक का विवेचन,* अनुवाद– गौरी शंकर लहरी. भोपालः मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1973.

व्हीलराइट, फिलिप, *नीतिशास्त्र का आलोचनात्मक परिचय,* अनुवाद मधुकर, इलाहाबादः सेन्ट्रल बुक डिपो, 1953

वर्मा, वेद प्रकाश. *दर्शन–विवेचना.* दिल्लीः हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 1989.

वर्मा, वेद प्रकाश. *नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त,* चतुर्थ संस्करण. नई दिल्लीः अलाईड पब्लिशर्स, 2012.

वर्मा, वेद प्रकाश. *अधि–नीतिशास्त्र के मुख्य सिद्धान्त.* नई दिल्लीः अलाईड पब्लिशर्स, 2016.

शर्मा, केदार नाथ. *नीतिशास्त्र की रूपरेखा.* मेरठः केदार नाथ राम नाथ, 1965.

मूल ग्रन्थ (अनुवादित)

अरस्तू. *निकोमाचियन नीतिशास्त्र,* अनुवाद– आलोक कुमार. सेन्टर फॉर इनोवेटिव लीडरशिप, 2020.

प्लेटो. *रिपब्लिक,* अनुवाद– भोलेनाथ शर्मा, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 2007.

मिल, जे. एस., उपयोगितावाद, अनुवाद उमराव सिहं कारूणिक, मेरठः ज्ञान प्रकाशन मन्दिर, 1924।

मूर, जी. ई. *प्रिंसिपिया एथिका.* दिल्लीः हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय।